गाँधी बनाम साम्यवाद

वर्तमान भारतीय राजनैतिक रंग-मंच

का

सर्वश्रेष्ठ विवेचनात्मक ग्रंथ

सामयिक
१२

प्रणेता —

योग, अध्यात्म और राजनीति शास्त्र के विशेषज्ञ

श्री सदानंद भारती

प्रकाशक:—

एस० एस० मेहता ऐण्ड ब्रदर्स

६२, ६३ सूतटोला-काशी।

सजिल्द २।)] १९५१

मुद्रक—
पं० गिरिजाशंकर मेहता
मेहता फाइन आर्ट प्रेस,
सूतटोला-काशी ।



हम आज यह समझने में असमर्थ हो रहे है कि हमें कहाँ जाना है, और हम कहाँ जा रहे हैं। आँखों के सामने पर्दा पड़ गया है, उत्साह नष्ट हो गया है, रास्ता दिखाई नहीं पड़ता, निराशा छायी हुई है। आज १०-१२ वर्षों से हम जिस मार्ग पर चल रहे हैं उसे छोड़कर हमारी सेना भागती हुई दिखाई दे रही है। सेनापति कहता है कि तुमने शस्त्र का उपयोग उपयुक्त तरीके से नहीं किया, अत शस्त्र को म्यान के भीतर रख दो। सैनिकों में विचार दारिद्र्य दिखाई देता है। सहसा प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है कि क्या भारत का उद्धार सम्भव नहीं है ? क्या हमारे लिये सभी रास्ते बन्द हैं ? क्या राष्ट्र सर्वदा ही गुलाम बना रहेगा ?

हमारे सामने जो संकट आज उपस्थित हो गया है वह हमारे दुर्भाग्य का नहीं, किन्तु सौभाग्य का चिन्ह है। प्रकृति हमारी परीक्षा में संलग्न है। वह यह स्पष्ट रूप से देखना चाहती है कि भारतीय राष्ट्र सेवियों मे वह दम है अथवा नहीं, जो स्वतंत्रता स्थापित करने तथा बाद में उसकी रक्षा के लिये आवश्यक होता है। यह समय निराश होने अथवा हाथ-पर-हाथ रखकर बैठने का नहीं है। अपने प्रिय देश को पराधीनता की जबर्दस्त बेड़ियों से मुक्त करने के लिये हम लड़ें और खूब लड़ें। इस संघर्ष में हम इस अर्थ में सफल नहीं हुए कि भारत आज भी परतन्त्र है। केवल इस बात से हतोत्साह हो जाना मनुष्यत्व नहीं, किन्तु नपुंसकत्व का परिचायक

और सत्याग्रह है। 'हिन्दस्वराज्य' नामक पुस्तिका में उन्होंने अन्तिम व्यापक साध्य का जो रूप यत्किंचित् लिखा है, उसका प्रचार जनता में प्राय. नहीं हुआ न उसको जनता के किसी बड़े या छोटे अंश ने जाहिरा अपनाया, न महात्मा गांधी ने ही उसको फैलाने का यत्न किया।

लेनिनवाद कहिए, सोवियट की प्रवर्तमान नीति कहिए, उसमें से बहुत-से अंश बहुत ही ग्राह्य हैं। यथा १–प्रसूति के लिये सार्वजनिक सूतिका गृहों में अथवा अस्पतालों मे व्यापक प्रबन्ध। २—बच्चों की और माताओं की विशेष रक्षा का प्रबंध, जब माता स्वयं बच्चों की, विशेष कारणवश, रक्षा नहीं कर सकती। ३—समस्त बालक बालिकाओं को बुद्धि संस्कारक तथा जीविकासाधक उचित शिक्षा का व्यापक प्रबंध। ४—सब स्त्रियों-पुरुषों को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल जीविका कार्य में लगा देने का, और खेती बारी तथा कल-कारखानों के रोजगारों को बढ़ाने का व्यापक प्रबन्ध, जिस प्रबन्ध के कारण आज रूस में बेकारी का नाम भी नहीं है, बल्कि काम करनेवालों की ही कमी है। जहां पच्छिम के अपने को परम सभ्य माननेवाले अन्य देश इस बेरोजगारी के बोझ से दबे जा रहे हैं। ५–सब वयःप्राप्त पुरुषों को तथा जो स्त्रियां स्वयं चाहें उनको भी देशरक्षा के लिये उपयोगी सामरिक शिक्षा देने का व्यापक प्रबन्ध। ६–व्यक्तियों की आमदनी में अति वैषम्य न होने का प्रबन्ध ७—पर्याप्त चिकित्सालयों का प्रबन्ध। ८—न्यायालयों में अति शीघ्र और प्रायः पञ्चायती फैसला हो जाने का प्रबन्ध। तथा अन्य इससे सम्बन्ध के प्रबन्ध।

इस पुस्तक में महात्मा गांधी की क्रियात्मक प्रणाली का विवेचन किया गया है और साथ ही साम्यवाद का भी इतिहास तथा उनके दल का हमारे भारतवर्ष के लिये क्या लक्ष्य है उसपर भी प्रकाश डाला गया है। पुस्तक को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा गांधी का कार्यक्रम वास्तव में साम्यवाद का क्रियात्मक रूप-मात्र है।

———

है। संसार की परतन्त्र जातियों के स्वाधीनता संग्राम के पवित्र इतिहास की ओर दृष्टि डालिए और तब यह विचार कीजिए कि क्या उन विभिन्न राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के पुजारियों के सामने भी ऐसी ही किंवा इससे भी कठिन तथा जटिल समस्याएँ अनेक बार नहीं उपस्थित हो चुकी हैं? क्या उन देशों के राष्ट्र-सेवकों को गहरे-से-गहरे दमन का मुकाबिला नहीं करना पड़ा है? क्या कभी-कभी युद्ध के बाह्य लक्षण ऐसे नहीं दिखाई देते थे, जिनसे यह धारणा होती थी कि स्वतन्त्रता का आन्दोलन कुचल डाला गया? क्या पुनः उन्हीं मुट्ठीभर स्वतन्त्रता-सग्राम के सिपाहियों ने अपने राष्ट्र का उद्धार नहीं किया है? आयरलैण्ड के श्री डेवेलरा को क्या पर्वतों की गुफाओं और जंगलों में छिपकर अपने आदर्श की रक्षा नहीं करनी पड़ी है? क्या टर्की के शेर कमालपाशा को टर्की के पुनरुद्धार के कार्य में अनेक बार क्षणिक असफलता का सामना नहीं करना पड़ा है? क्या जारशाही के रक्तशोषक चंगुल से, पूंजीपतियों की लूट से रूस का उद्धार करने के लिये लेनिन तथा उनके अनेक साथियों को साइबेरिया के भयानक जगलों में तथा बाद में बहुत दिनों तक विदेशों की खाक नहीं छाननी पड़ी है।

ख़ैर, अब हमें आगे यह देखना है कि हम इस सग्राम में कहाँ तक सफल हुए या एकदम ही निष्फल रहे। जो हुआ उसमें क्या और कितना गुण था, तथा क्या त्रुटि थी, इसको जानना हो तो अपनी आंख से ही, अपने विरोधियों की आंख से देखना चाहिए। सर मालकम हेली ने प्रायः पौने दो वर्ष हुए, दविया में कहा कि कांग्रेस की पराजय न गवर्नमेंट की दमननीति से हो रही है बल्कि निषेधक कार्यक्रम के अतिभाव और विधायक कार्यक्रम (कांस्ट्रक्टिव प्रोग्राम) के अभाव से हो रही है।' इसी समय में तारीख १८ नवंबर १९३३ के 'लीडर' में 'मैनचेस्टर गार्डियन' नामक ब्रिटिश दैनिक पत्र से उद्धरण करके, सर ए० मैकफर्सन का जो पत्र छपा था, वह विशेष ध्यान से पढ़ने

योग्य है। उसमें सुसंघटित सत्याग्रह के सामर्थ्य को स्वीकार किया गया है, और कांग्रेस का सत्याग्रह सुसंघटित क्यों नहीं हो सकता। इसके हेतु की सूचना भी की गई है। यह सज्जन भारतवर्ष में ३५ वर्षतक आई० सी० एस० में नौकर रहे हैं, जिसके अन्तिम ५ वर्ष बिहार प्रान्त के गवर्नर भी रहे, अतः अनुभवी समझे जाने चाहिए।

स्वराज्य क्या है ? किसान मजदूरों का इसमें क्या स्थान है ? पूंजीवाद समाज के संघठन के लिये क्या आवश्यक वस्तु है ? आर्थिक असमानता कैसे दूर होगी ? ज़मीदारो-तालुक़ेदारों के रहते क्या किसानों की आर्थिक अवस्था में सुधार हो सकता है ? फैक्टरी मालिक की दोहननीति के रहते क्या सर्वसाधारण का तथा मज़दूरों का कल्याण हो सकता है ? गांधीवाद के पास इन प्रश्नों का क्या उत्तर है ?"

श्री हरिहरनाथ का पाश्चात्य कतिपय विचारशील लेखकों के अनुसार कहना है कि 'दो परस्पर विरोधी शक्तियों में समन्वय असम्भव है, संसार के अकल्याण का मूल कारण मशीनवाद नहीं बल्कि पूंजीवाद है, जिसका जन्म मशीनवाद के साथ-साथ हुआ था। पूंजीवाद यह नतीजा था कि मशीनवाद का फल बजाय इसके कि जनसाधारण को मिलता, इने-गिने पूंजीपतियों को ही मिला। नए आविष्कारों से उन्होंने अपने स्वार्थ की सिद्धि की। पं० जवाहिरलालजी ने, गत शीतऋतु में, जेल से बाहर आने के बाद इस बात पर जोर दिया कि कांग्रेस की आर्थिक नीति, 'इकोनोमिक पालिसी' का निर्धारण हो।

'गाधीवाद और लेनिनवाद' का समन्वय निश्चयेन हो सकता है- यदि दोनों में-से उपयुक्त अंश चुन लिए जांय। 'अति वादों, का समन्वय नहीं हो सकता। 'गाधीवाद क्या है यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता। तो भी स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि महात्माजी ने कोई विस्पष्ट साध्य देश के सामने नहीं रखा है, साधनों पर ही जोर दिया है। प्राय गांधीवाद का अर्थ 'अहिंसा, खादी, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार

गाँधीजी का व्यक्तित्व

१

जब कभी गाँधी सफर पर बाहर निकलते हैं, तो प्रायः उनकी यात्रा रेल के तीसरे दर्जे मे ही हुआ करती है अथवा वे हाथ मे लकडी लिए हुए, नंगे पैर गाँव-गाँव ही घूमा करते हैं। उनके शरीर पर कमर में डेढ़ गज कपडे के अतिरिक्त, कुछ भी नहीं रहता। उनके इस देश के स्वागत के लिये रेलवे स्टेशन जनता से भरे हुए मिलते हैं। उनके मुख से एक शब्द सुनने के लिये, उनके दर्शनों की एक झलक पाने के लिये, हजारों-लाखों मनुष्य अति उत्कण्ठा से पहरों प्रतीक्षा करते हुए आपको मिलेंगे। उनके दर्शनों की आशा मे, उनकी स्तुति का कीर्तन करते हुए, जनता के लिये पहर बिता देना बिलकुल साधारण-सी बात है। देश का वायु-मण्डल जनता के कण्ठ से निकली हुई उनके नाम की जय-ध्वनि से काँप उठता है। जिस स्थान अथवा ग्राम में वे एक रात बिता दें, वह स्थान अथवा ग्राम जनता के लिये तीर्थ ही बन जाता है। भारत के सभी सम्प्रदाय अपने धर्म-मन्दिरों में उनके लिये मङ्गल-कामना करते हैं। हिन्दुओं के लिये तो वे साक्षात् अवतार ही हैं। हजारों ही चित्र उनके अवतार के रूप में आपको इस देश में प्रचलित मिलेंगे।

मैजिस्ट्रेट मिस्टर लॉयड महात्मा गाँधी के बड़े विकट विरोधियों में-से माने जाते हैं। जिस समय गाँधी साबरमती में सन् १९२२ गिरफ्तार हुए थे, उस समय मिस्टर लॉयड ने कहा था-'गाँधी को इसी हवालात में जीवित गाड़ दो, नहीं तो यह हवालात ही संसार के लिये मक्का बन जायगा।' मिस्टर लॉयड का कहना कुछ उनकी भूल नहीं थी। अगले ही दिन देश भर के समाचार-पत्रों में जो समाचार प्रकाशित हुए थे, उनसे प्रकट होता है कि सन्ध्या होते-होते समुद्र की उमड़ती हुई लहरों के समान, असंख्य जनता के प्रवाह ने साबरमती जेल को घेर लिया। जनता जेल के दरवाजे के सम्मुख इस संयत-भाव से खड़ी थी, मानों भक्त मन्दिर के सम्मुख खड़े हों। ज्योंही दरवाजा खुलने की घण्टी बजी, उपस्थित जन-समुद्र मे स्फूर्ति की एक नई लहर-सी फिर गई। भक्तों के समूह आगे बढ़े, और अपने आराध्य देव के चरणों में पृथ्वी पर लेट गए। कुछ ने भक्ति-भाव से उनके चरणों का स्पर्श किया, कुछ ने दूर से ही अभिवादन किया, और जो बहुत दूर थे, उन्होंने भूमि तक सिर झुकाकर ही अपने मन की श्रद्धा प्रकट की।

महात्मा गाँधी देश के लिये पूजा की वस्तु हैं। भारत ने जो आदर अपने नेता को दिया है, उससे अधिक आदर की कल्पना करना असम्भव है। महात्माजी किसी राजकीय वंश से नहीं हैं और न उनकी वंश-परम्परा का सम्बन्ध ही धर्माचार्यों की किसी श्रेणी से है। परंतु फिर भी बड़े-से-बड़े ब्राह्मण और क्षत्रिय, उनके दर्शनों से अपने-आपको कृत-कृत्य समझते हैं। कवीन्द्र ठाकुर ने महात्माजी के विषय में लिखा है-'सम्पूर्ण भारत पूर्ण-रूप से उनका अनुगामी है, क्योंकि वह उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरू समझता है।' अनेक भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायों के लोग आँख मूँदकर उनके पीछे चलने के लिये जिस प्रकार तैयार हैं, वह बीसवीं सदी में

एक चमत्कार से किसी प्रकार भी कम नहीं है और भारत को छोड़कर संसार मे और कहीं भी इसकी सम्भावना नहीं की जो सकती। अभ्यस्त और पुराने अपराधी भी गाधी की आज्ञा सुनकर विनीत हो जाते हैं। मेरा महात्मा गांधी से अनेक विषयों मे मत-भेद है। परन्तु मैं उन्हें भक्ति और स्तुति का पात्र समझता हूँ। वे न केवल भारत, वरन् संसार के सबसे बड़े महापुरुष हैं।

महात्मा जी का यह अक्षुण्ण प्रभाव केवल सर्वसाधारण तक ही परिमित नहीं, भारत की बृटिशश्रेणी के लोग भी उन्हे उसी सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। कवीन्द्र ठाकुर के शब्दों मे महात्मा का अर्थ है—'स्वार्थ से परे वह महात्मा, जिसने सब जीवों मे अपनी आत्मा का अनुभव किया है, जो विश्व-ब्रह्मांड में व्याप्त विभु-आत्मा के साथ एक हो गया है।'

महात्मा गांधी की वैयक्तिक महत्ता तथा उनके प्रभाव को भली प्रकार समझने के लिये भारत की विशेष परिस्थितियों से परिचित होना बहुत जरूरी है। एक प्रकार से भारत एक अच्छा-खासा अजायबघर ही है। असंख्य वंशों, अनेक जातियों, सैकड़ों भाषाओं और प्रायः संसार-भर के सभी सम्प्रदायों के अनुयायी इसमें मौजूद हैं। सात करोड़ तो अकेले मुसलमान ही हैं, जो अनेक शताब्दियों से इस देश में हिन्दुओं के साथ रहते हुए भी आज तक विरोध और भिन्नता को भुला न सके। इसको छोड़िए, स्वयं हिन्दू ही पुराने समय से भिन्न-भिन्न मुख्य चौरासी भागों में, तथा अनेक असंख्य उपभागों मे इस प्रकार बँटे हुए हैं, कि उन्हें बाहर के आदमी के लिये एक समझना असम्भव है। वे आपस में न एक-दूसरे के हाथ का खा ही सकते हैं, न परस्पर विवाह-सम्बन्ध आदि ही कर सकते हैं। उदाहरणात बाग के माली के लिये खेत का किसान बिलकुल पराया है। उनका आपस में कोई भी सम्बन्ध सम्भव नहीं। जनता का

पाँचवाँ भाग अछूत है, जिनका स्पर्श क्या, तुच्छ का तो दर्शन-मात्र ही उच्च हिन्दू-मात्र को अपवित्र करने के लिये पर्याप्त है। यह वर्ण-व्यवस्था न केवल सामाजिक क्षेत्रों मे ही परिमित है, परन्तु व्यापार तथा उद्योग-धन्धे तक मे इसी प्रकार चली गई है। ऊंचे और नीचे वंश के मनुष्यो का व्यापार में, अथवा एक ही स्थान पर कार्य करना सम्भव नही।

भारत के इस बहुत बड़े जन-समाज के इतने छिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी अवयवों को एकत्र करके एक माला मे ऐसा पिरोया जाना गांधी के वैयक्तिक स्वभाव से ही सम्भव हो सकता है। जो कुछ अब तक मनुष्य-समाज के इतिहास मे न हुआ था, वही महात्माजी ने कर दिखाया। उन्होने न केवल इन भिन्न-भिन्न अंशो को एक में मिला दिया, वरन् एक मे मिलाकर उसे ऐसी प्रबल शक्ति बना दिया, जिसका सामना करना कुछ मतलब रखता है। अछूत के प्रश्न को ऐसा सुलझाया कि बडे-से-बड़े राजनीतिज्ञ उनकी चाल के आगे दाँतो तले अंगुली दबाते है।

भारतीय राष्ट्र के सभी अङ्गों को इस एक व्यक्ति पर पूर्ण विश्वास है। कलकत्ते के करोड़पति उसे अपना नेता समझते हैं, तो दरिद्र क्षुधार्त्त भी भिखमंगे उसे अपना प्रतिनिधि मानते हैं। पूंजीपतियो से लेकर साम्यवादी-मजदूर-संघ तक उसकी सम्मति की अवहेलना नहीं कर सकता। देश भर के लिये उसके शब्द जादू का प्रभाव रखते हैं। सारा राष्ट्र एक टक उसकी अंगुली के संकेत की ओर देख रहा है। उसका एक शब्द हिन्दुओं, मुसलमानों, हरिजनो और द्विजों, अमीर और गरीबों के सब भेद-भाव को मिटाकर उन्हे परस्पर मिला देने के लिये पर्याप्त हैं।

अहमदाबाद के अखिल भारतीय कॉंग्रेस के अधिवेशन के स्थान एक महान् भोज का आयोजन हुआ था। महात्मा गाँधी इस

भोज के प्रधान थे। भारत के सभी भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो, मतों और जातियों के ५० हजार से अधिक मनुष्यों ने इस सहभोज में भाग लिया था। हिन्दुओं की प्रसिद्ध धार्मिक सङ्कीर्णता के बावजूद इस सहभोज मे अति-उच्च ब्राह्मणों से लेकर, विकट रूप से सङ्कीर्ण मुसलमानों और अत्यन्त नीच समझे जानेवाले हरिजन तक ने न केवल एक स्थान पर बैठकर, वरन् एक-थाल में भी भोजन किया। यह सहभोज भारत की संस्कृति के क्षेत्र में एक प्रचण्ड क्रांति का आरम्भ था। यह भारत के नवयुग की भावना का संकेत था। इस भोजन के कुछ ही दिन पश्चात देश के चुने हुए प्रतिनिधियों ने महात्माजी को देश का 'निर्बाध-नेतृत्व' दे दिया गया।

जिस समय महात्मा गाँधी बीमार थे, अनशन करते थे सारा देश एक प्राण हो, अत्यन्त चौकस व्यग्रता से एक-एक क्षण में उनकी अवस्था को देख रहा था। देश के कोने-कोने में, धर्म-मन्दिरों में उनके दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना की जा रही थी। मन्दिर, गिर्जे, और मस्जिद, सभी ने इस प्रार्थना में सहयोग दिया था।

इसके पश्चात् जब महात्मा जी जेल से छूटे तो फिर उसी एकता का भाव दिखाई दिया। उस आनन्दोत्सव मे सम्पूर्ण देश के सभी सम्प्रदायों, जातियों और संस्थाओं ने भाग लिया। गाँव-गाँव नगर-नगर मे प्रसन्नता के जलसे किए गए। मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजों मे भगवान को धन्यवाद दिया गया। सभाओं मे, जिनमें सभी विचारों के प्रतिनिधि उपस्थित थे, गाँधी को ईश्वर की ओर से शान्ति-रक्षा के लिये आया हुआ भगवान् का दूत कहकर उसकी स्तुति की गई। प्रत्येक भारतवासी ने इस दिन को एक पवित्र धार्मिक त्यौहार की भाँति मनाया। भिक्षुकों और अपाहिजों को यथाशक्ति दान भी दिया गया, तथा बच्चों को मिठाई भी मिली।

कुछ लोग जो यह कहते हैं, कि भारत का वास्तविक शासक गाँधी ही है, यह बिल्कुल भी मिथ्या नहीं है। भारत की रियासतों के महाराजाओं की सम्पूर्ण तड़क-भड़क और अँग्रेजी नौकरशाही की शान और दबदबे से अधिक प्रभाव इस दुबले-पतले, नग्न-प्राय भिक्षुक का भारत की जनता पर है। भारत की राजनीति का केन्द्र देहली नहीं, बल्कि जेलखाने की भयानक कोठरी, अस्पताल में रोगियो का कमरा, रेलगाड़ी में तीसरे दर्जे की गाड़ी, किसी एक साधारण ग्राम की झोपड़ी, किसी दूसरे नागरिक का निहायत मामूली-सा मकान, या साबरमती में महात्मा गाँधी का आश्रम है। या यों कहिए, जहां कहीं गाँधी हो—चाहे वे कहीं भी क्यो न हों, वहीं इस समय भारत की राजनीति का केन्द्र है। भारत के भाग्य के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न इस व्यक्ति के साथ सम्बन्धित हैं और वहीं उन्हे हल भी कर सकता है।

आज सत्याग्रह-आन्दोलन अवश्य ही शिथिल हो गया है और भारत के राजनीतिक-क्षेत्र मे भी शिथिलता अवश्य ही दिखाई पड़ रही है। इसका कारण महात्मा गाँधी अपना सम्बन्ध राजनीति से तोड़कर केवल हरिजन आंदोलन मे लगे हुए हैं। फिर भी उनकी अनुपस्थिति मे कोई भी राजनैतिक समस्या तय नहीं हो सकती। कोई भी मामला हो, उनकी सम्मति उसमे लेनी आवश्यक समझी जाती है। शासकवर्ग भले ही अपनी विजय की दुंदुभी बजाये, परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि यह कोई असाधारण बात नहीं है। राजनैतिक क्षेत्र मे इस प्रकार की शिथिलता प्रायः सभी जगह और देशों मे आई है। भारत तो एक निहत्था राष्ट्र है। प्रकट मे राजनीति से सम्बन्ध खींच लेने पर भी उनकी सम्मति और आज्ञा ही सब-कुछ है। उनके सम्मुख सबका अधिकार और प्रभुत्व फीका पड़ जाता है। भारत की जागृति और आन्दोलन गाँधी के व्यक्तित्व के साथ अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। जिस समय गाँधी

पूना के अस्पताल में बीमार पड़े थे, उस समय मि० ऐराड्रूज ने उनके विषय में लिखा था—'भारत का वास्तविक शासक, जिसका प्रभाव सम्राट् की प्रभुता से भी अधिक है-इस समय यहाँ बीमार पड़ा है। जिस समय देहली के भव्य प्रासादों में रहनेवाले गवर्नर के नाम विस्मृति अपने हाथ से पोंछ देगी, उस समय भी महात्माजी का नाम स्वर्णाक्षरों मे चमकता रहेगा। भारत की सन्तान, अनन्त काल तक महात्माजी की कीर्ति-कथा सुनती ही रहेगी।"

महात्माजी के अत्यन्त विकट विरोधी, उनके राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धी तक उनके व्यक्तित्व का लोहा मान गए हैं। जनरल स्मट्स, लॉर्ड रीडिंग, लॉर्ड हार्डिञ्ज तक, जो एक समय अपने आपको महात्माजी का शत्रु समझते थे, आज निकट मित्रों में-से हैं। कुछ दिन हुए मि० पार्सिवल लांडोन् सुप्रसिद्ध अंग्रेज-लेखक ने लिखा था कि—"गाँधी एक राजनीतिक नेता ही नहीं, बल्कि वर्तमान समय के धर्माचार्य हैं और संसार के सबसे बड़े महापुरुष हैं।'

जिस समय महात्मा गाँधी सरकार के विरुद्ध विद्रोह फैलाने के अपराध में अदालत में पेश किए गए गये थे, उस समय भी उनके व्यक्तित्व के प्रभाव की अदालत अवहेलना न कर सकी थी। गाँधीजी की राजनैतिक सहयोगिनी सरोजिनी नायडू उस समय का वर्णन करती हुई लिखती हैं—"महात्माजी ने सरकार की दृष्टि में अपराधी और गुनहगार के रूप में प्रवेश किया है। परन्तु उनके भीतर पैर रखते ही सम्पूर्ण अदालत उनकी अभ्यर्थना के लिये उठकर खड़ी हो गई। जज ने भी उनके साथ अत्यन्त आदर का व्यवहार किया और अपना निर्णय सुना देने के पश्चात् कहा—"मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, कि आप मनुष्य-समाज की

कुछ लोग जो यह कहते हैं, कि भारत का वास्तविक शासक गाँधी ही है, यह बिल्कुल भी मिथ्या नहीं है। भारत की रियासतों के महाराजाओं की सम्पूर्ण तड़क-भड़क और अँग्रेजी नौकरशाही की शान और दबदबे से अधिक प्रभाव इस दुबले-पतले, नग्न-प्राय भिक्षुक का भारत की जनता पर है। भारत की राजनीति का केन्द्र देहली नहीं, बल्कि जेलखाने की भयानक कोठरी, अस्पताल में रोगियो का कमरा, रेलगाड़ी मे तीसरे दर्जे की गाड़ी, किसी एक साधारण ग्राम की झोपड़ी, किसी दूसरे नागरिक का निहायत मामूली-सा मकान, या साबरमती में महात्मा गाँधी का आश्रम है। या यों कहिए, जहा कहीं गाँधी हो—चाहे वे कहीं भी क्यों न हों, वहीं इस समय भारत की राजनीति का केन्द्र है। भारत के भाग्य के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न इस व्यक्ति के साथ सम्बन्धित हैं और वहीं उन्हें हल भी कर सकता है।

आज सत्याग्रह-आन्दोलन अवश्य ही शिथिल हो गया है और भारत के राजनीतिक-क्षेत्र में भी शिथिलता अवश्य ही दिखाई पड़ रही है। इसका कारण महात्मा गाँधी अपना सम्बन्ध राजनीति से तोड़कर केवल हरिजन आंदोलन मे लगे हुए हैं। फिर भी उनकी अनुपस्थिति मे कोई भी राजनैतिक समस्या तय नहीं हो सकती। कोई भी मामला हो, उनकी सम्मति उसमे लेनी आवश्यक समझी जाती है। शासकवर्ग भले ही अपनी विजय की दुंदुभि बात नहीं है। राजनैतिक क्षेत्र मे इस प्रकार की शिथिलता प्राय. सभी जगह और देशों में आई है। भारत तो एक निहत्था राष्ट्र है। प्रकट मे राजनीति से सम्बन्ध खींच लेने पर भी उनकी सम्मति और आज्ञा ही सब-कुछ है। उनके सम्मुख सबका अधिकार और प्रभुत्व फीका पड़ जाता है। भारत की जागृति और आन्दोलन गाँधी के व्यक्तित्व के साथ अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। जिस समय गाँधी

पूना के अस्पताल में बीमार पड़े थे, उस समय मि० ऐराड्रूज़ ने उनके विषय में लिखा था—'भारत का वास्तविक शासक, जिसका प्रभाव सम्राट् की प्रभुता से भी अधिक है-इस समय यहाँ बीमार पड़ा है। जिस समय देहली के भव्य प्रासादों में रहनेवाले गवर्नर के नाम विस्मृति अपने हाथ से पोछ देगी, उस समय भी महात्माजी का नाम स्वर्णाक्षरों में चमकता रहेगा। भारत की सन्तान, अनन्त काल तक महात्माजी की कीर्ति-कथा सुनती ही रहेगी।"

महात्माजी के अत्यन्त विकट विरोधी, उनके राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धी तक उनके व्यक्तित्व का लोहा मान गए हैं। जनरल स्मट्स, लॉर्ड रीडिंग, लॉर्ड हार्डिङ्ग तक, जो एक समय अपने आपको महात्माजी का शत्रु समझते थे, आज निकट मित्रों में-से हैं। कुछ दिन हुए मि० पार्सिवल लांडोन् सुप्रसिद्ध अंग्रेज-लेखक ने लिखा था कि—"गाँधी एक राजनीतिक नेता ही नहीं, बल्कि वर्तमान समय के धर्माचार्य हैं और संसार के सबसे बड़े महा-पुरुष हैं।'

जिस समय महात्मा गाँधी सरकार के विरुद्ध विद्रोह फैलाने के अपराध में अदालत में पेश किए गए गये थे, उस समय भी उनके व्यक्तित्व के प्रभाव की अदालत अवहेलना न कर सकी थी। गाँधीजी की राजनैतिक सहयोगिनी सरोजिनी नायडू उस समय का वर्णन करती हुई लिखती हैं—"महात्माजी ने सरकार की दृष्टि में अपराधी और गुनहगार के रूप में प्रवेश किया है। परन्तु उनके भीतर पैर रखते ही सम्पूर्ण अदालत उनकी अभ्यर्थना के लिये उठकर खड़ी हो गई। जज ने भी उनके साथ अत्यन्त आदर का व्यवहार किया और अपना निर्णय सुना देने के पश्चात् कहा—"मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, कि आप मनुष्य-समाज की

उस श्रेणी के अंग हैं, जिससे मुझे न अब तक काम ही पड़ा है और न भविष्य में पड़ने की आशा ही करता हूँ।"

यही नहीं, कि महात्माजी के विरोधी न हों। अन्य सब राजनैतिक नेताओं की भांति उनके भी काफी शत्रु हैं। इन शत्रुओं का विरोध और घृणा का परिमाण भी महात्माजी की महत्ता का उतना ही परिचायक है, जितनी कि उनके भक्तों की श्रद्धा और अगाध भक्ति! एक अंगरेज संवाददाता ने महात्माजी के सम्बन्ध में विविध श्रेणी के मनुष्यों की सम्मतियाँ एकत्र की हैं। एक बंगाली स्टेशन-मास्टर की सम्मति में महात्माजी देवता हैं। एक अंग्रेज-अफसर कहता है—"मुझे इस मनुष्य को देखकर देव-दूत पॉल का भाव होता है।" दूसरा उन्हे 'भयङ्कर क्रान्तिकारी' कहता है। तीसरा—'शेखचिल्ली' चौथा—'कूटनीतिज्ञ' और पाँचवाँ 'उच्छृङ्खल विद्रोही' कहता है। जो कुछ भी हो, महात्माजी असाधारण व्यक्ति हैं। वे देवता हों या राक्षस, उनका व्यक्तित्व ध्यान देने तथा विचार के योग्य है।

महात्माजी का प्रभाव केवल नगरों तक ही परिमित नहीं, सुदूर गाँवों तक में उनके प्रभाव की गहरी छाप पड़ चुकी है। एक बार सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र वसु के सुदूर पहाड़ी प्रान्त के कुछ भीलों से मिलने पर भीलों ने उन्हे बताया, कि उन लोगों ने अहेर करना एकदम छोड़ दिया है। सर वसु के इसका कारण पूछने पर उन्होंने बताया—"महात्मा गाँधी ने वन मे अशान्ति फैलाने से मना किया है।" इन लोगों को महात्माजी के देखने का और उनके व्याख्यान सुनने का अवसर कभी प्राप्त नहीं हुआ। बहुत दूर से महात्माजी का 'अहिंसा' का सन्देश ज्यों-त्यों उनलोगों तक पहुँच गया है। इसी कारण जीव-जन्तुओं की हिंसा छोड़कर वे लोग कृषि से पेट पालने लगे हैं। महात्माजी के सिद्धान्तों का इतना गहरा प्रभाव उनलोगों पर पड़ा है कि उन्होंने न केवल अन्य

पशुओं का आखेट ही छोड़ दिया है, वरन् घर पर मास के लिये पाले गए पशुओ तक का भी काटना बन्द कर दिया है। पहिले ये लोग पशुओ को बाजार मे बेचकर जीविका चलाते थे, परन्तु अब वे केवल खेती पर ही निर्भर हैं। अपने सब पशुओं को उन्होंने जङ्गल मे खदेड़ दिया है।

न्यूयार्क की 'वर्ल्ड मैगजीन' के संवाददाता प्रास्पर बुनारोली एक भारतीय के साथ अपने प्रश्नोत्तर का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—उनके यह पूछने पर कि 'क्या तुम महात्मा गाँधी से मिले हो?' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—"नहीं मिला, तो क्या हुआ, परन्तु उसे कौन नहीं जानता? वह महान् है। साधारण मनुष्य उसे समझ नहीं सकता।' मि० बुनारोली का कहना है, कि भारत के लाखों-करोड़ों मनुष्य महात्मा गाँधी को इसी रूप में समझते और दखते हैं। उनके लिये वह स्वर्गीय देवदूत हैं। उसका सन्देश, सन्देह और तर्क की सीमा से परे हैं। खेत के किसान से लेकर अंग्रेजी यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट तक सब भारतवासी भारत की अनुभूति के इस प्रतिनिधि के पीछे आँख मूँदकर चलने के लिये तैयार हैं। महात्मा गाँधी के दक्षिण-अफ्रीका के सहयोगी मि० पोलक गाँधी के प्रभाव के चमत्कार का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—"तुम उसके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी नहीं कह सकते, यह कहना दुष्कर है कि गाँधी क्या है और कैसा है? उसके प्रभाव का अनुभव कर, तुम केवल इतना ही कह सकते हो, कि गाँधी यहाँ है, या वहाँ है। उसका प्रभाव और शक्ति इतनी स्पष्ट है, कि उसकी अवहेलना की ही नहीं जा सकती।" यह सत्य सभी महापुरुषों के प्रति एक-समान ही लागू होता है।

———

२

गाँधी महात्मा या धर्मगुरु जो भी—देखने मे छोटे कद का एक साधारण व्यक्ति हैं। आयु उनकी छाछठ वर्ष के लगभग है। उनके मुखपर सौन्दर्य का कोई भी चिन्ह नहीं, रङ्ग गहरा साँवला और शरीर में मांस केवल हड्डियों को ढकने-मात्र के लिये पर्याप्त है। उनके सिर का ढाँचा कुछ विचित्र-सा है। कान, ख़ूब बड़े-बड़े और बाहर की ओर निकल-से रहे हैं, सिर पर बाल बहुत महीन छटे हुए हैं। और कनपटियों पर कहीं-कहीं सफेद होते भी जा रहे हैं। उनकी गहरी काली भृकुटी के नीचे भूरी आँखें ख़ूब बड़ी और उज्ज्वल हैं। ऊपर के पतले होठ पर छँटी हुई मूँछो की पतली-सी लकीर रहती है। निरन्तर तपस्या और बीमारी के सिलसिले से उनका शरीर इतना निर्बल और सूक्ष्म हो गया है, कि खड़े होकर व्याख्यान देना भी उनके लिये सम्भव नहीं है! उमड़ते हुए जन-समूह के बीचोबीच प्राय: उन्हे एक चौकी पर बैठा दिया जाता है, इसी स्थान से बैठे-बैठे वे भक्तो को उपदेश देते हैं। मैजिष्ट्रेट लॉयड ने उनके विषय में लिखा था—"गाँधी का शरीर दुबला-पतला एक ढाँचा-मात्र ही है।"

गाँधीजी के बोलने का ढङ्ग बिलकुल स्वाभाविक है। शान्त, गम्भीरभाव से नपे-तुले शब्दों में वे एक बात कहेंगे। लेनिन के समान भारत में क्रान्ति-युग के प्रवर्त्तक इस महापुरुष के बोलने-चालने के ढङ्ग मे भाव-भङ्गी, आवेश, अथवा उद्रेक का लेश-मात्र भी नहीं पाया जाता। बोलते समय प्रायः एक उँगली को हिला-हिलाकर वे सङ्केत किया करते हैं। शब्दाडम्बर से उन्हे घृणा है, और भावुकता को जगाना उन्हें पसन्द नहीं है। उनका मन एक बात को मनुष्य के मस्तिष्क मे बैठा देने की ओर ही रहता है। एक प्रसङ्ग का भली प्रकार विश्लेषण किए बिना वे कभी नहीं छोड़ते। जब तक किसी व्यक्ति के विचारों मे वे समूल परिवर्तन करने में सफल नहीं हो जाते, वे अपने प्रति उसके विचारों की सहानुभूति का कुछ भी मूल्य नहीं समझते। शब्दाडम्बर-पूर्ण अर्थ-हीन वाक्यों का उन्हे अभ्यास नहीं है। उनके हृदय मे धर्म के प्रति अगाध-श्रद्धा है। परन्तु फिर भी हिन्दुओं की श्रुतियो को ईश्वर-कृत मानने के लिये वे तैयार नहीं हैं। इस विषय मे उन्होंने स्वयं लिखा है:—

'मैं श्रुतियों और स्मृतियों के प्रत्येक शब्द को ईश्वरीय समझ-कर उनपर विश्वास करने में असमर्थ हूँ।......जो कोई भी बात मुझे बुद्धि और युक्ति से रहित जान पड़ेगी, अथवा जिसे मैं अन्याय समझूँगा, वह चाहे कितनी ही विद्वत्तापूर्ण हो, मैं उसपर विश्वास करने मे असमर्थ हूँ।'

फ्रांस के सुप्रद्धि विद्वान् रोम्यारोलाँ ने गाधीजी की मनोवृत्ति का इस विषय में बहुत स्पष्ट विश्लेषण किया है। वे लिखते हैं—'उनका मस्तिक सदा शान्त, व्यवस्थित और मन अहङ्कार से शून्य रहता है। वह अन्य सर्व-साधारण मनुष्यों के समान-ही अपने-आपको एक मनुष्य समझते हैं।' रोम्यारोलाँ लिखते हैं—'महात्मा गाँधी ही केवल एक ऐसे ईश्वर के प्रतिनिधि संसार में आए हैं,

जिन्होंने न तो ईश्वर के प्रतिनिधि होने का ही दावा किया, और न भगवान् के साक्षात् दर्शनों और उनसे आज्ञा प्राप्त करने का दावा किया है।'

महात्मा जी ने अनेक अवसरों पर स्पष्ट रूप से अपने-आपको ऋषि या महात्मा कहे जाने का भी विरोध किया है। वे कहते हैं—'मैं न साधु हूँ और न यागी। मुझे न तो भगवान् दर्शन ही देते हैं, और न मुझ तक सन्देश ही भेजते हैं। मेरा विश्वास है, कि वे सब लोगों की आत्मा में सन्मार्ग का निर्देश किया करते हैं। परन्तु हम उपेक्षा के कारण उनके आदेश को ग्रहण नहीं कर पाते। मैं भारत का और मनुष्य-मात्र का एक तुच्छ सेवक हूँ। किसी नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की इच्छा मेरी नहीं। जो कुछ भी मेरी बुद्धि के अनुसार सत्य है, मैं उसका ही अनुसरण करता हूँ।'

अपनी भूल को स्वीकार करने में उन्हें कभी हिचकिचाहट नहीं हुई। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'मुझमें कोई भी अलौकिक सामर्थ्य नहीं। सर्वसाधारण की भाँति भूल करना मेरे लिये नितान्त स्वाभाविक है। मेरी शक्ति और योग्यता परिमित है। परन्तु भगवान् मुझमें अनन्त त्रुटियों के होते हुए भी मुझ पर कृपालु है।'

गिरफ्तार होने से पूर्व महात्माजी का विश्वास था, कि उनके गिरफ्तार हो जाने से जनता को लाभ ही होगा, हानि नहीं। वे वे समझते थे कि उन लोगों का भ्रम, जो उनमें अलौकिक शक्ति होने का विश्वास करने लग गए हैं—स्वयं दूर हो जाएगा। इसके अतिरिक्त संसार और सरकार भी यह समझ जाएगी कि असहयोग का आन्दोलन केवल उन्हीं पर आश्रित नहीं, वरन् वह जनता के अपनी परिस्थिति के कारण उत्पन्न, असन्तोष का परिणाम है।

मि० सी० एफ० एण्ड्रूज लिखते हैं—'महात्मा जी की सफलता का वास्तविक रहस्य है, उनका पूर्ण निस्स्वार्थ। इस निस्स्वार्थ-

भाव के कारण उनकी दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट, और दूरदर्शिता तथा विश्वास अटल हो गया है। महत्वाकांक्षा के नितांत अभाव तथा सत्यनिष्ठा के कारण वे जनता की अनन्त श्रद्धा तथा गहरे विश्वास के पात्र बन गए हैं। यही उनकी सफलता की एक-मात्र कुञ्जी और उनकी अलौकिक शक्ति है।'

उनका अत्यन्त संक्षिप्त और सरल वेश, उनके हृदय की सरलता तथा निष्ठा के साथ सदा एक रस जान पड़ता है। केवल खद्दर का डेढ़ गज टुकड़ा-भर ही उनकी सब पोशाक है। कमर से घुटनों तक का भाग उनका ढका रहता है। केवल जाड़ो की ऋतु में सर्दी से बचने के लिये एक मोटा कम्बल वे कन्धों पर डाल लेते हैं। सिर को वे सदा नंगा रखते हैं। पैरों मे कभी चप्पल पहनते हैं, अन्यथा नंगे ही पाँव रहते हैं। अदालत में न्यायाधीश के सम्मुख और वाइसरीगल लाज में वायसराय के सम्मुख, राउंडटेबुल कानफरेंस मे यहाँ तक कि इङ्गलैण्ड के राज महल तक मे वे इसी भिक्षुक के वेश में उपस्थित हुए हैं। जिसके लिये सम्राट जार्ज पंचम को भी महलो के वेश-संबंधी नियमों की उपेक्षा तक करनी पड़ी है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है, कि महात्माजी का यह भिक्षुक-वेश, उनका चिन्ताग्रस्त भाव और उनकी विश्वासोत्पादक उज्ज्वल आँखें, अपना एक विशेष प्रभाव रखती हैं। उनकी सरलता सहृदयता और गंभीर निष्ठा, उनकी चाल-ढाल, बोल-चाल तथा प्रत्येक भाव-भंगी में स्पष्ट झलकती दिखाई देती है।

यदि यह कहा जाय, कि महात्माजी बहुत अच्छे वक्ता नहीं हैं, तो भी कोई अन्याय नहीं होगा? पर सम्पूर्ण देश और राष्ट्र तो उनके पीछे आँखें मूँदकर चलने को हर घड़ी तैयार है। जनता के उबलते हुए जोश को-उनका एक शब्द, उनकी उँगली का एक संकेत, शात करने के लिये पर्याप्त है। एक नहीं, अनेक अवसरों पर ऐसा हुआ

है, कि उन्हे विरोधी और क्रोधोन्मत्त जनता के सन्मुख उपस्थित होना पड़ा है और उनकी सौम्य-मूर्ति और अविचल शांति ने भयंकर रक्त-पात को रोक लिया है। महात्माजी के कट्टर विरोधी मि० लॉयड तक को यह स्वीकार करना पड़ा है कि इस हड्डियों के ढाँचे-मात्र व्यक्ति का प्रभाव दुर्धर्ष है। पैंतीस करोड़ मनुष्य उसके एक शब्द, एक संकेत-मात्र से जिस ओर वह चाहे, पशुओं के समूह की भाँति चलने को तैयार हैं।............वह उनका ईश्वर है।'

महामना गोखले ने महात्मा गाँधी को उनके जीवन के आरम्भ में ही देख पाया था। गोखले ने उसी समय भविष्यद्वाणी कर दी थी कि 'इस व्यक्ति मे वह सभी लक्षण उपस्थित हैं, जो एक कर्म-वीर नेता में होने आवश्यक हैं। इतना ही नही, वरन् साधारण जनता को भी बलिदान के मार्ग पर चला सकने योग्य सामर्थ्य भी इस व्यक्ति में प्रचुर है।

लेनिन की भाँति महात्माजी के व्याख्यानों मे भी न शब्द-लालित्य रहता है, न वे उतने श्रुति-मधुर और आवेशपूर्ण ही होते हैं। शांत तथा गम्भीर स्वर में क्रियात्मक राजनीति की चर्चा गहराई तक वे किया करते हैं। देश के सम्मुख कोई भी कार्य-क्रम उपस्थित करते समय वे एक-एक नुक्ते को लेकर उसकी गहरी विवेचना और समीक्षा करते हैं। यहां तक कि कार्य-क्रम का कोई भी पहलू उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाता! उदाहरणात-स्वरूप यदि उन्हे कताई के विषय में कुछ कहना होगा, तो रूई की भिन्न-भिन्न क़िस्मों से लेकर चर्खों के अनेक रूप, सूत के गुण, अवगुण, बुनाई के सिद्धांत और फिर बुने हुए कपड़े की खपत के उपायो तक की विषद व्याख्या करने में न चूकेंगे।

गाँधीजी का ढङ्ग इतना सीधा, सरल और व्यवसायात्मक

होने पर भी उसका प्रभाव जनता पर बहुत गहरा पड़ता है। बड़े-से-बड़े व्याख्याताओं से कहीं अधिक प्रभाव इनका जनता पर पड़ता है। हज़ारों-लाखों व्यक्ति केवल महात्माजी का अनुशासन मानकर प्रति दिन कुछ-न-कुछ समय सूत कातने अथवा कपड़ा बिनने के काम में व्यय किया ही करते हैं। वे लोग अपनी जीवन-चर्या में अत्यन्त महत्व का स्थान देते है, और इसका कारण है— केवल महात्माजी के प्रति उनकी श्रद्धा। इस नित्य के सून कातने को उन लोगो ने अपनी नित्य की पूजा-पाठ का एक अङ्ग मान लिया है। महात्माजी के प्रभाव से अधिकांश धनी-मानी परिवारों की स्त्रियाँ अपने जापानी रेशम के महीन, सुंदर तथा बहुमूल्य वस्त्रों को छोड़कर, ये कोमलाङ्गी महिलाएँ, अपने हाथ से कने कपड़ों पर ही निर्वाह कर रही हैं। यहीं तक नहीं, गाँधी का प्रभाव समाज के उन स्थलो तक भी पहुँचता है, जहाँ सुशिक्षा और सुविचार की किरण का पहुँचना प्राय. असम्भव जान पड़ता है। लखनऊ और बारीसाल वगैरह में सैकड़ों स्त्रियो ने व्यभिचार के व्यापार को छोड़कर चर्खे का आश्रय ले लिया है। यहाँ तक कि जेलों में, खूंख्वार अपराधियों तक मे चर्खे की ओर प्रवृत्ति और श्रद्धा होने लगी है।

इस समय से पूर्व, भारत के इतिहास में इस ढंग के संगठित आन्दोलन और जागृति का कोई दृष्टांत आपको न मिलेगा। चर्खा आज भारत की राष्ट्रीयता और सामाजिक क्रांति का चिह्न बन रहा है। यही नहीं भारत का राष्ट्रीय झंडा भी चर्खे मय है। देश के सभी सम्प्रदायों, सभाओं और अंगो ने इसे राष्ट्रीयता का चिह्न मान लिया है।

जनता पर महात्माजी के प्रभाव का एक और अचूक प्रमाण लीजिये। महात्माजी ने विदेशी वस्त्र का खरीदना ही पाप नहीं

वताया, वल्कि पहिले से खरीदे हुए विदेशी वस्त्र को धारण करना भी पाप वता दिया। यह प्रश्न जरा कठिन था। यहाँ केवल भावुकता का ही नहीं, पेट का भी प्रश्न था। परंतु गाँधी के प्रभाव से मुग्ध भारतीय जनता यहाँ भी पीछे न हटी। जनता ने अपनी गाढ़ी कमाई से खरीदे हुए विदेशी कपड़े को अग्नि समर्पण करना आरंभ कर दिया। वंबई में केवल एक अवसर पर प्रायः डेढ़ लाख के क़ीमती वस्त्र एक वृहद् होली में जला दिए गए। इस प्रकार की होलियाँ सभी वड़े-वड़े नगरो मे अनेक अवसरो पर की जा चुकी है।

महात्मा गाँधी की इस शक्ति और प्रभाव का कारण उनके वैयक्तिक जीवन में किस स्थान पर है—यह वताना कठिन है। पासिवाल लाएडोन् का कहना है—"इस महापुरुष में एक दिव्य शक्ति है, जो उसकी निस्वार्थ भावना से मिलकर उसकी सरलता को अजेय बना देती है। उसका सामना करना संभव नहीं।" गिल्बर्ट मरे ने भी अनेक वार यही कहा है—"महात्मा गाँधी मे एक अवर्णनीय, असाधारण साधुता है, जो संपूर्ण वनावट और कृत्रिमता को छिन्न-भिन्न कर देती है।"

———

३

महात्माजी के व्यक्तित्व की स्थिर-गम्भीर शान्ति और उत्फुल्लता किसी भी व्यक्ति पर प्रभाव डाले विना नहीं रहती। राजनैतिक जीवन की गहन चिन्ता भी उनकी सरलता और भोली मुस्कराहट को उनके चेहरे से दूर नहीं कर सकी है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखते हैं—"उनकी प्राकृतिक उत्फुल्लता कठिन-से-कठिन अवसर पर भी उनके हृदय में बनी ही रहती है।" महात्माजी के असहयोग आंदोलन में गिरफ्तार किए जाने की खबर चारों ओर फैल चुकी थी। उनके निकट-मित्र तथा अनुयायी आकर अपनी चिन्ता प्रकट करने लगे। उस समय भी महात्माजी की स्वाभाविक सरलता और आमोद में कुछ अन्तर नहीं पड़ा। वे अपने मित्रों से हँस-हसकर वातचीत कर रहे थे। परिस्थिति के अनुकूल सलाह भी वे प्रत्येक व्यक्ति को दे रहे थे। पुलिस-अफसर के स्वयं उनके सम्मुख आ-जाने पर भी वे अपने समीप बैठे, बच्चो से विनोद करते रहे। उनकी प्रफुल्लता देखकर सभी उपस्थित-जन चकित थे।

अपने अभियोग में उपस्थित होने के लिये गाँधीजी के अदालत में जाने का वर्णन करते हुए एक भारतीय सम्वाददाता लिखता है—"महात्माजी बड़ी बेपरवाही से हँसते हुए अदालत में आए। आते ही उन्होंने मुस्कराकर उपस्थित जनता की ओर देखा। उनकी मुस्कराहट के प्रभाव को सभी उपस्थित लोगों ने अनुभव किया। उनके व्यवहार में चिन्ता अथवा भय के स्थान में आमोद और प्रसन्नता झलक रही थी। ऐसा जान पड़ता था, गाँधीजी अभियोग सुनने नहीं, बल्कि विवाह में सम्मिलित होने आए हैं।"

जिन दिनों महात्माजी साबरमती जेल में थे, उनके कुछ मित्र उनसे मिलने के लिये गए। वहाँ उनलोगों ने महात्माजी को तकिए की जगह पर खद्दर का एक बण्डल लिये हुए खूब मजे में सोते हुए पाया। जिस समय वे उठे, उनके शान्त और स्वस्थ चेहरे पर स्वाभाविक प्रसन्नता की किरणें फूटी पड़ती थीं। उठते ही वे अपने मित्रों से हँस-हँसकर बातें करने लगे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई बालक स्कूल का समय समाप्त हो जाने पर प्रसन्नता से कूदना चाहता हो। चिन्ता या भय का कहीं लेश-मात्र भी उनके चेहरे पर दिखाई न पड़ता था।

महात्माजी सभी लोगों से नम्रता और आत्मीयता का व्यवहार करते हैं। उनके विरोधी भी सम्मुख आने पर उनके प्रति आकर्षण अनुभव किए बिना नहीं रह सकते! महात्माजी की नम्रता और विनय-शीलता उनलोगों पर भी अपना प्रभाव डाल जाती है। बगावत फैलाने के अपराध में छः वर्ष की जेल का हुक्म सुनाने के पश्चात् जज ने एक बार विनय से उनके सम्मुख सिर झुका दिया। उत्तर में महात्माजी ने उसी समय अत्यन्त नम्रता से हाथ जोड़कर धन्यवाद दिया।

उनके जीवन का ढंग बहुत ही सादा है। बहुत ही कम खर्च में

से अपना निर्वाह करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी आवश्यकता एक साधारण मजदूर की जरूरत से अधिक न होगी। उनका प्रधान भोजन मूंगफली, केला, खजूर, नीबू, बकरी का दूध और थोड़ा चावल ही है। इधर उन्होंने इनमे भी बहुत से पदार्थों को छोड़ दिया है। दिन में वे दो बार भोजन करते हैं, एक प्रातः और दूसरा सन्ध्या को। सब प्रकार के नशे, चाय, कॉफ़ी, इलायची से वे परहेज़ करते हैं। उनका विस्तर केवल मोटा खद्दर का एक टुकड़ा है, जिसे वे भूमि पर बिछाकर लेट रहते हैं। तकिए के स्थान पर खद्दर के कपड़ों का कोई वण्डल अथवा एक पुस्तक रख लेते हैं। यदि संभव हो, तो वे बाहर बिलकुल खुले मे बिना कुछ बिछाए ही—एक खद्दर की चादर ओढ़कर ही सोना पसन्द करते हैं। विलायत में पार्लमेंट के सामने अपना मंतव्य पेश करने के समय जब वे सन् १६३१ में पधारे थे, उस समय भी वे प्रायः खुले ही मैदान में शयन किया करते थे।

अपने विद्यार्थी-जीवन में महात्मा गाँधी इङ्गलैण्ड में एक बार यूरोपियन सभ्यता और रहन-सहन के ढंग को अपनाने का प्रयत्न कर चुके हैं। वह ढंग उन्हें न तो रुचिकर लगा और न उपयोगी ही जान पड़ा। उन्होंने अपनी आत्म-कथा में इस विषय की सब आप-बीती का वर्णन ख़ूब जी खोलकर किया है। नकटाई बाँधने में उन्हें विशेष असुविधा होती थी। नाच में ताल-सुर मिलाना उनके लिये दुष्कर था और यही हाल वायलिन (वेला) का भी समझिए। अपने मित्रों की सलाह से उन्होंने यह सब-कुछ सीखने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु उन्हें सफलता न मिली। इस विषय में असफल रहने से उनका ध्यान इन सब बातों की कृत्रिमता और व्यर्थता की ओर गया। आपने अपनी वायलिन वेच डाली, नाच-सीखना छोड़ दिया और फ्रेञ्च का पाठ लेना भी बन्द कर दिया। उन दिनों

सभा-समाज में जाने से उन्हें बेहद सङ्कोच और घबराहट अनुभव होती थी।......एक अवसर पर वे एक भोज में सम्मिलित हुए। वहाँ माँस-भोजन उनके सम्मुख रक्खा गया। गाँधीजी ने यूरोप जाते समय माता के सम्मुख माँस न खाने की प्रतिज्ञा की थी। इस प्रतिज्ञा को स्मरण कर, वे मेज पर से उठ खड़े हुए और भोज से वापिस लौट आए। इस दिन से उन्होंने अंग्रेज बनने का सब प्रयत्न ही छोड़ दिया।

महात्माजी कुछ वर्ष दक्षिण-अफ्रीका में भी रहे हैं। भारत-वासियों के साथ जो भीषण अन्याय वहाँ उस समय हो रहा था, उसके विरुद्ध उन्होंने आन्दोलन भी आरंभ कर दिया। महात्माजी यहाँ एक प्रकार से त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे। रस्किन और टॉलसटॉय महात्माजी के आध्यात्मिक गुरु हैं। इनके सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिये महात्माजी ने दक्षिण अफ्रीका मे एक आश्रम की स्थापना भी की है। कुछ लोग इनके सिद्धान्तों से सहमत थे। वे भी आकर इनके ही साथ रहने लगे। कुछ भूमि खरीदकर मकान बनाए गए और कुछ भारतवासी यहाँ आ शान्ति और आत्म-सम्मान का जीवन व्यतीत करने लगे। सब आश्रमवासी एक प्रकार के आध्यात्मिक भ्रातृ-संघ के सदस्य थे। इनमें किसी प्रकार भी छोटे या बड़े का भेद-भाव न था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने हाथों से अपनी भूमि के टुकड़े पर खेती करनी पड़ती थी। स्वयं महात्माजी सहूलियत के वक्त खेती का काम किया करते थे। इस आश्रम के खोलने और संचालन मे महात्माजी को अपने पास से बहुत खर्च करना पड़ा और वे एकदम फकीर हो गए।

भारत में आकर ऐसा ही एक दूसरा आश्रम महात्माजी ने साबरमती के किनारे अहमदाबाद से कुछ मील के अन्तर पर

स्थापित किया है। इस आश्रम में प्रायः उनके अपने संबंधी और दूसरे अव्यक्त निकटवर्ती मित्र-जन ही रह रहे हैं, पर हरिजन आंदोलन में आने के साथ ही उन्होंने अपने आश्रम को उनके लिये एकदम खाली कर दिया। यह आश्रम इस प्रकार खाली कर देने का संबंध उनकी प्रतिज्ञा से है। क्योंकि जिस समय उन्होंने धरसाना मे नमक सत्याग्रह के लिये प्रस्थान किया था, उस समय उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि बिना स्वराज्य लिये वे पुनः उस आश्रम में पैर न रक्खेंगे। गाँधी-इर्विन समझौता हो जाने पर जब वे जेल से छोड़े गए तो वे अपने आश्रम में नहीं रहे, पर अलग कुटी आदि में ही रहे। फिर विलायत से लौटने पर बंबई से ही गिरफ्तार होकर चले गए। जेल में हरिजनों को हिंदू-समाज से पृथक किए जाते देखकर प्राणान्त तक अनशन की प्रतिज्ञा की उन्होंने जो उन्हीं की सलाह से समस्या हल की गई और हरिजन और सवर्ण हिंदुओं में सलझौता हो गया। उसी समय से उन्होंने हरिजनोद्धार का काम शुरू किया। उस आश्रम का नाम सत्याग्रह-आश्रम था। यहाँ सब लोग त्याग और तपस्या का जीवन बिताकर सत्य की खोज में निरत रहते थे।

महात्माजी अपने आश्रम के विषय में एक स्थान पर लिखते हैं—"यहाँ हम सब अशिक्षित और मूर्ख लोग एक साथ रहकर सत्य को पहचानने और खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम अपनी न्यूनताओं को जानते हैं और इन्हें बहुत अच्छी तरह समझाने का प्रयत्न भी कर रहे हैं।"

आश्रम के मकान बहुत छोटे-छोटे और कम ऊँचे बने हुए हैं। सामान के नाते उनमें वही रक्खा गया है, जिसके बिना काम चलना संभव नहीं। आश्रम-वासियों का सिद्धान्त है कि आवश्यकताओं को जहाँ तक संभव हो, कम कर दिया जाया।

महात्माजी का विचार है कि अपनी आवश्यकता से अधिक

जमा करके रखने से हम चोरी के अपराधी होंगे। सृष्टि का नियम है कि प्रकृति प्रत्येक प्राणी के लिये, जो संसार में उत्पन्न हुआ है, सब आवश्यक वस्तुएं पैदा करती है। यदि कुछ लोग आवश्यकता से अधिक लेंगे, तो आवश्यक है कि शेष की आवश्यकताएँ अवश्य पूरी न हो सकेंगी और उन्हें भोजन के बिना ही मरना पड़ेगा। किसी को भूखों मारने का हमें क्या अधिकार है?......हमें किसी दूसरे पुरुष से कुछ छीनने का भी अधिकार नहीं। जहाँ तक मेरे अपने जीवन का सवाल है, मैं कह सकता हूँ—मेरा अपना कुछ भी नहीं और न तो मुझे किसी वस्तु की चाह ही है। जब तक पैंतीस करोड़ व्यक्ति दिन-भर में एक बार खाकर निर्वाह कर रहे हों, कुछ मनुष्यों के भोग-विलास की सामग्री सञ्चय करना मनुष्यता नहीं कहा जा सकता। जिस समय असंख्य मनुष्य भूखों मर रहे हों, यदि कुछ व्यक्तियों के स्वेच्छा से कष्ट उठाने से उनका कुछ भला हो सके, तो क्या उनलोगों का यह कर्तव्य नहीं है, कि वे ऐसा करना स्वीकार करें?"

महात्माजी तथा उनके परिवार का जीवन उनके दारिद्र्य के व्रत के सर्वथा अनुकूल है। उनके घर की दीवारों पर किसी क़िस्म की सजावट नहीं है। उनके कमरे में एक छोटी-सी डेस्क और किताबें रखने की आलमारी के सिवा और कुछ भी नहीं रहा। इसी कमरे में वे उठते-बैठते तथा अपने मिलने-जुलनेवाले लोगों से भी मिलते-जुलते रहे। वहीं भूमि पर कपड़ा बिछाकर महात्माजी काम करने बैठते। तीन खद्दर के टुकड़ों के अतिरिक्त चौथा वस्त्र उनके पास कभी भी नहीं रहा। उन्होंने अपनी संपूर्ण संपत्ति अपने देश के हित में अर्पण कर दी है।

महात्माजी की स्त्री का नाम कस्तूरीबाई है। विवाह के समय गांधीजी की आयु केवल १२ वर्ष की थी। विवाह हो जाने के बाद

सुख-दुख में सदा ही वे उनके साथ रही हैं। कस्तूरीबाई का शरीर बहुत निर्बल और क्षीण है। उनके भोले और सरल मुख पर उनके हृदय का साहस और दृढ़ निश्चय स्पष्ट झलकता दिखाई पड़ता है। उसके साथ ही दया और वात्सल्य का भाव भी इतना स्पष्ट है, कि कोई भी व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कस्तूरीबाई भी गाधीजी की भाति हाथ से कता और बुना वस्त्र ही पहनती हैं। एक खद्दर की लाल किनारे की धोती-मात्र पहने हुए वे अपनी सहेलियों के साथ गांव-गाव, नगर-नगर पति-देव के सन्देश को लिए फिरती हैं। खद्दर तथा अछूतोद्धार से उन्हे विशेष प्रेम है।

ट्रासवाल, दक्षिण-अफ्रीका मे महात्मा गांधी ने जब सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया, उस समय अनेक लोग इच्छा-पूर्वक कष्ट भोगने के लिये जेल मे गए। सबसे प्रथम जेल जानेवालों मे कस्तूरीबाई ही अकेली एक थीं। कस्तूरीबाई आरम्भ ही से कष्ट और मुसीबतो मे अपने पति का हाथ बँटाती रही हैं। पिछले सत्याग्रह-आन्दोलन जब इनके दोनों पुत्र जेल चले गए, उस समय सैकड़ों पत्रो के उत्तर मे उन्होंने यही एक उत्तर दिया था—'मेरे दो पुत्र जेल में गए हैं, तो हर्ज ही क्या? देश के इस समय हजारों ही पुत्र जेल मे सड रहे हैं। जब हजारों माताएँ पुत्र-वियोग सह रही हैं, तो मुझे ही आंसू बहाने का क्या अधिकार है।'

महात्माजी के पुत्र उनके सिद्धांतों के पूर्ण अनुयायी हैं। युवक देवीदास गाधी ने अदालत में जज के सामने जो जवाब दिया है, उसमे गाधी के विचारों की छाया अत्यन्त स्पष्ट झलक रही है। देवदास के शब्द थे—'जो-कुछ भी अभियोग मुझपर लगाया गया है, मै उसे स्वीकार करता हूँ, खूब सोच समझकर और विचारपूर्वक किया है। उस सबका उत्तरदायित्व मुझपर है। और मैं चाहता हूँ, उसके लिये अधिक-से-अधिक जो भी सजा हो मुझे दी जाय।'

महात्मा गाँधी की भांति देवीदास भी बराबर सत्य और अहिंसा के प्रचार मे ही अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलन में वे बराबर जेल की दीवारो से निडर रहकर कार्य करते रहे। यही तक नहीं, राजगोपालचारी की पुत्री से शादी हो जाने के बाद भी जिस समय वे कुछ समय जेल से बाहर रहकर गार्हस्थ्य जीवन का आनंद लेने का निश्चय कर हिंदुस्तान टाइम्स के दफ्तर मे कार्य करने के लिये दिल्ली जा रहे थे, वहाँ पर दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर ने उन्हे दिल्ली न आने का हुक्म दिया, पर वे इस अनुचित आज्ञा का उल्लंघन करने के लिये वहाँ गए और गिरफ्तार भी हुए। उन्होंने अपने दांपत्य सुख का उस समय जरा भी ख्याल न किया।



गाँधी अपने सम्बन्धियो और अनुयायियों-सहित अपने आश्रम मे रहते हैं। इन सब लोगो ने स्वेच्छा से दारिद्र्यव्रत ग्रहण किया है। इस व्रत के पालन के लिये वे साधारण-से-साधारण और कम-से-कम भोजन भी करते हैं। जब तक कोई वस्तु शरीर-रक्षा अथवा स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य न हो, वे उसे उपयोग में नहीं लाते। गाँधीजी का विश्वास है, कि जो मनुष्य जिह्वा को वश में कर सकता है, उसके लिये अन्य इन्द्रियों को वश मे करना सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त हमलोगों के भोजन की बहुत-सी सामग्रियाँ होती हैं, जिनके तैयार करने के लिये अन्य मनुष्यों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। गाँधीजी लिखते हैं—"यदि हमलोगों को चाय, कॉफी अथवा काको के खेतों में जाकर वहाँ मजदूरों के प्रति किए गए व्यवहार को देखने का अवसर मिले, तो हम निश्चय ही इन वस्तुओं का उपयोग मे लाना सर्वथा छोड़ देंगे। जो कुछ भी हम भोजन के लिये उपयोग मे लाते हैं, यदि उस सबको हमें स्वयं ही तैयार करना पड़े, तो हम प्रायः दश मे-से नौ वस्तुओं का व्यवहार करना छोड़ बैठेंगे।"

गाँधीजी के तपश्चर्या और त्याग के सिद्धान्त के अनुसार आश्रमवासियों के लिये इन्द्रिय-संयम नितान्त आवश्यक है। गाँधीजी ब्रह्मचर्य को, मन और कर्म दोनों से ही आवश्यक मानते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष उनके आश्रम में केवल उसी अवस्था में प्रविष्ट हो पाते थे जब वे अपने पहले सम्बन्ध को छोड़कर भाई-बहन की भाँति रहने की प्रतिज्ञा कर लेते। गाँधीजी के विचार में आध्यात्मिक उन्नति के लिये मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य्य का पालन आवश्यक है। वे कहते हैं—"जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ वश में हैं, उसे मृत्यु का भी भय नहीं हो सकता। वह मीठी मुस्कान से उसका सहर्ष स्वागत कर सकता है। ऐसा जीवन ही मनुष्य जन्म के योग्य है और यही सफल जीवन भी कहा जा सकता है।"

गाँधीजी के उपरोक्त विचार अक्षरशः महात्मा टॉल्सटॉय की विचार-धारा का अनुसरण कर रहे हैं। यह है भी स्वाभाविक। क्योंकि गाँधीजी के जीवन पर टॉल्सटाय के लेखों का गहरा प्रभाव भी पड़ा है। उदाहरण के तौर पर टाल्सटाय ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'क्रूजर सोनाटा' की भूमिका मे लिखा है—"इन्द्रियासक्ति से बढ़कर दूसरा पाप नहीं।" टाल्सटाय ने इस उपन्यास मे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, कि स्त्री और पुरुषों के परस्पर एक दूसरे की इन्द्रिय-सुख के लिये उपभोग करने से पाप की उत्पत्ति होती है, और यहीं से उनमे परस्पर एक-दूसरे के प्रति घृणा का आरम्भ भी होता है। टाल्सटाय विवाह को सिद्धान्त-रूप से मान्य नहीं समझते। उनका कहना है, इन्द्रिय-लिप्सा के लिये अथवा इन्द्रिय-आसक्ति से जो विवाह किया जाता है, वह व्यभिचार से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। विवाह मे किसी प्रकार की धार्मिक धारणा को वे स्वीकार नहीं करते। इसे वे घरेलू व्यभिचार कहकर

व्यभिचार के अन्य सब रूपों के समान ही निन्दनीय और हेय समझते हैं।

टाल्सटाय की दृष्टि मे इन्द्रियासक्ति सबसे बड़ा गुनाह है और वे स्त्री-पुरुषों के वैवाहिक-सम्बन्ध का विच्छेद कर, उन्हे केवल भाई-बहन के रूप मे ही देखना चाहते हैं। टालसटाय ऐन्द्रिक-उच्छृङ्खला को घोर पाप समझते हैं। उनका विचार है, इसके लिये कठोर-से-कठोर दराड दिया जाना चाहिए। अन्यथा कम-से-कम उतना ही, जितना कि व्यापार में धोखा देने पर दिया जाता है। उन लेखकों और चित्रकारों से उन्हे घोर घृणा है, जो स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को इन्द्रिय-लिप्सा की ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं—"हमें समाज में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे लोकमत से प्रभावित हो, लोग इन्द्रियासक्ति को घृणा की दृष्टि से देखने लगें। साहित्य में इन्द्रिय-लिप्सा को बढ़ाने की जो प्रवृत्ति है, उसे बदलकर साहित्य के प्रभाव को इस प्रकार प्रयोग मे लाया जाय, कि यह वृत्तियाँ मनुष्य के मस्तिष्क से निकल जाँय।"

गाँधीजी अपने व्याख्यानों और लेखों में सदा ही ब्रह्मचर्य को महत्त्व देते हैं। उनका कहना है, भगवान् की दी हुई इस गुप्त शक्ति को हमे पूर्ण-रूप से अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के विकास मे लगाना चाहिए।......ब्रह्मचर्य को सदा ही हमें अपनी निगाह मे रखना चाहिए, और निरन्तर अभ्यास से पूर्ण ब्रह्मचर्य के जितने भी समीप हो सकें, हमें पहुँचने का प्रयत्न भी करना चाहिए। शैशवावस्था से ही बच्चों की नित्य की शिक्षा में ब्रह्मचर्य के प्रति हमे श्रद्धा और अनुराग उत्पन्न करना चाहिए, जिससे ब्रह्मचर्य उनकी प्रकृति का अङ्ग बन जाय। गाँधीजी का विशेष गुण उनकी स्पष्ट वादिता है। वे स्वीकार करते हैं कि यौवन के

आरम्भ में उन्होंने प्राय: ब्रह्मचर्य की उपेक्षा की और उसके लिये वे लज्जित भी है। भारत मे जन्म लेने के कारण गाँधीजी का विवाह बारह वर्ष की अवस्था मे ही हो गया था। इसलिये बाल विवाह होने के कारण होनेवाली मानसिक और शारीरिक हानिया का उन्हें पर्याप्त अनुभव है।

गाँधीजी ने अपनी आत्म-कथा मे, भारत की इस विचित्र प्रथा का भी वर्णन विस्तार से किया है। इस जञ्जाल से उन्हे किस प्रकार छूटकारा मिला, इसका भी जिक्र उन्होने किया है। गांधी लिखते हैं—"इस छोटी आयु मे विवाह का अर्थ बालक के लिये सुन्दर वस्त्रों तथा मिठाई की आशा और नित्य के लिये नया साथी मिलने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता।"

गाँधीजी ने आरम्भ में इधर-उधर की छोटी पुस्तकों से पति के कर्त्तव्य और अधिकारों की जानकारी प्राप्त करनी आरम्भ की थी। इन पुस्तकों में गाधीजी ने पतिव्रत-धर्म के विषय में पढ़ा और विशेष सावधानी से इन बातों का पालन उन्होंने शुरू भी कर दिया। वे लिखते हैं—"यद्यपि मुझे अपनी स्त्री के विषय में किसी भी प्रकार सन्देह करने का कोई भी कारण नहीं था। परन्तु मैंने उसपर बहुत कड़ी निगरानी रखनी आरम्भ कर दी। उसे अपनी आज्ञा बिना कहीं भी आने-जाने से मैंने मना कर दिया। इन पाबन्दियों का परिणाम यह हुआ कि मेरी स्त्री के मन में मेरे प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा। मेरी कठोर निगरानी के कारण घर उसके लिये जेल के समान हो गया। कस्तूरीबाई ने पति की इस आज्ञा को सीधे से सिर झुकाकर स्वीकार नहीं कर लिया। उसने अपनी इच्छानुसार आना-जाना जारी रखने का आग्रह किया। गांधीजी स्त्री की स्वतंत्रता को रोकने का ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते, त्यों-त्यों वह अधिक पुष्ट होने लगी। इससे गांधीजी की क्रोधाग्नि में घी का

असर हुआ। आखिर बात यहां तक बढ़ी कि दोनों की बोल-चाल तक बन्द हो गई। गांधीजी लिखते हैं—"मैं मानता हूँ, इसमें भूल मेरी ही थी। एक लड़की से यह आशा रखनी कि वह घर से बाहर निकले ही नहीं, न मन्दिर जाय और न सगे-सम्बन्धियों से ही मिले, यह मेरा भारी अन्याय था। कुछ भी हो, अपनी आज्ञा की पाबंदी के लिये उस समय मैंने सभी उचित-अनुचित उपायों का व्यवहार करने मे कुछ भी न सङ्कोच न किया।'

ऊपर कह आए हैं, गांधीजी का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। विवाह के पश्चात भी वे स्कूल जाते रहे। स्कूल मे उनकी आँखें पोथी में और ध्यान घर पर बैठी नवेली बहू मे रहता था। इस निरन्तर काम-चिन्ता का प्रभाव बालक पर बुरा पड़ना ही स्वाभाविक था। परन्तु उसे उसकी कर्त्तव्य-बुद्धि और कार्य-निष्ठा ने बचा लिया। उस छोटी आयु में सौंपे गए कार्य को भी करने का उत्तरदायित्व वह सब समझते थे। इस कर्त्तव्य की चिन्ता ने उन्हें शारीरिक और मानसिक सर्वनाश से बचा लिया।

इसके पश्चात् दूसरी अवस्था आई। गाँधीजी ने जो कुछ भी शिक्षा इस समय तक प्राप्त की थी, वह उन्होंने कस्तूरीबाई को देनी आरंभ कर दी। कस्तूरीबाई ने इसका भी पूरा विरोध किया। इस विरोध के प्रतिरोध मे गाँधीजी ने बल-प्रयोग करना प्रारम्भ किया। गाँधीजी कहते हैं—"इस बल-प्रयोग का कारण उनका अपनी स्त्री के प्रति प्रेम की अधिकता थी। गाँधी अपनी स्त्री को संसार की दृष्टि में आदर्श-पत्नी बनाना चाहते थे।'

गाँधीजी के सहपाठियों ने उन्हे अपने जाल में फँसाकर कुमार्ग पर ले जाने का प्रयत्न भी किया था। परन्तु अपनी पत्नी के प्रति प्रेम के कारण वे प्रलोभन मे फँसने से बच गए।

भारतीय प्रथा के अनुसार नव-विवाहित स्त्रियाँ वर्ष में प्रायः छः

महीने नैहर में व्यतीत करती हैं। ऐसा ही गाँधीजी की स्त्री के साथ भी हुआ। गाँधीजी कहते हैं कि बालविवाह के कारण होनेवाली हानियों का, यह प्रथा किसी सीमा तक उपाय कर देती है। गाँधीजी का अपना काम सँभालने मे इस प्रथा से पर्याप्त सहायता मिली।

इङ्गलैण्ड मे शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी कस्तूरीबाई को बलात् सुमार्ग पर लाने की उनकी इच्छा दूर न हुई थी। इङ्गलैण्ड मे गाँधीजी के लौटकर आने पर भी जब कस्तूरीबाई ने गाँधीजी की इच्छानुसार चलना स्वीकार न किया, तो गाँधीजी ने क्रुद्ध होकर उन्हे उनके पिता के यहाँ भेज दिया और जब तक उस बेचारी ने बहुत दुखी होकर गाँधीजी से क्षमा-याचना न की, गाँधीजी ने उन्हें अपने यहाँ नहीं आने दिया। इन झगड़ों का अन्त उस समय तक न हुआ, जब तक कि पति-पत्नी ने भाई-बहन के समान रहना स्वीकार न कर लिया।

कुछ दिन पश्चात् गाँधीजी एक भारतीय कम्पनी की वकालत करने के लिये दक्षिण अफ्रीका चले गए। उन दिनों, दक्षिण-अफ्रीका में भारतवासियों की अवस्था बहुत शोचनीय थी। वहाँ जाते ही गाँधीजी भारतवासियों को उस अपमान-जनक जीवन से छुड़ाने के प्रयत्न के राजनैतिक झंझट मे फँस गए। गाँधीजी ने देखा, भारतीयों के हित के लिये उनका दक्षिण अफ्रीका में रहना आवश्यक है। वे भारत में आकर अपने परिवार को भी वहीं साथ लिवा गए। यहीं से कस्तूरीबाई का राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में अपने पति के साथ सहयोग आरम्भ होता है। तब से दोनों सहयोगी विचारों और क्रियात्मक क्षेत्र में बराबर बढ़ते चलते आए हैं।

अपनी भूलों के कारण ही महात्मा गाँधी को ब्रह्मचर्य के मूल्य का अनुभव इतना अधिक हुआ और उन्होंने इन्द्रिय-संयम को इतना महत्त्व देना आरम्भ किया। गाँधीजी लिखते हैं—"लोगों

का विश्वास है, मैं खूब स्वस्थ और बलवान् हूं। मुझमें उत्साह और स्फूर्ति की पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। मैं समझाता हूँ, कि लोगों का यह विश्वास किसी सीमा तक ठीक भी है। कुछ लोग समझते हैं कि मुझमें जवानी की जल्दबाजी अधिक है। कुछ भी हो, मैं समझता हूँ, मेरे शरीर और दिमाग मे निर्बलता मौजूद है और इसका कारण है, मेरे इन्द्रिय-लिप्सा में व्यतीत किये गए वे बीस वर्ष। यदि उस समय को भी मैं संयमपूर्वक व्यतीत कर सकता और अपने शरीर की उचित ढंग से रक्षा कर, उसे पवित्र रख पाता, तो आज मैं निश्चय ही अधिक बलवान् और स्वस्थ होता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उस अवस्था में मेरी शक्ति वर्तमान अवस्था से सहस्रो गुणी अधिक होती और मैं उससे देश तथा राष्ट्र की इस समय से कहीं अधिक सेवा कर सकता।......संसार में सफलता और शान्ति प्राप्त करने के लिये हमें कठिनाइयों और प्रलोभनों का सदा सामना करना होगा। यदि हममें इतनी शक्ति और साहस नहीं है तो हमारा जीवन व्यर्थ है।" सत्याग्रह-आश्रम स्थापित करने का एक प्रयोजन गाँधीजी का भारतीय जनता के सम्मुख एक पवित्र जीवन का आदर्श भी उपस्थित करना है।

साबरमती में आश्रमवासियों के जीवन के कठोर नियमों पर विचार करते समय सर्व-साधारण भारतवासियों के अनियमित भोग और इन्द्रिय-लिप्सा को कभी नहीं भुला देना चाहिए। भारत-वासियों का यह असंयम ही देश में व्यापक निर्बलता और व्याधियों का कारण है। सर्व-साधारण की इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिये महात्माजी अत्यन्त कठोर संयम और निग्रह का आदर्श स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रकार के दृष्टान्त से वे जनता के विचारों में परिवर्तन उपस्थित कर देना चाहते हैं। महात्मा गाँधीजी के राजनैतिक गुरु और पथ-प्रदर्शक महामना गोखले ने भी इस

राष्ट्रीय व्याधि को अनुभव किया था और इसे दूर करने का भी उन्होंने प्रयत्न किया था। इसी प्रयोजन से उन्होंने सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया नामक संस्था भी स्थापित की थी। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य देश के सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में सुधार और उन्नति करना था। गाँधी का साबरमती आश्रम गोखले की 'सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया' का ही दूसरा रूप है। हाँ, उनके कार्य-क्रम और उपाय उनसे कहीं अधिक उग्र हैं।

तपश्चर्या के उपरोक्त सिद्धान्तों के अनुसार महात्माजी और उनके अनुयायी पूर्ण संयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनकी इस सरलता, त्याग और तपश्चर्या का एक अद्भुत प्रभाव है। नित्य ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर महात्माजी तथा उनके भक्त साबरमती के किनारे जा, भगवत्-भजन करते हैं। प्रार्थना का आरम्भ उपनिषदों तथा गीता के पाठ से आरम्भ होता है। ऋषि-मुनियों के यह ग्रंथ इनलोगों की तपस्या में एक प्रकार की पवित्रता और स्फूर्ति का सञ्चार कर देते हैं। इन लोगों के आत्म-विस्मृत और निग्रह के जीवन का आरम्भ प्रतिदिन इसी प्रकार होता है।

महात्माजी को अपनी जन्म-भूमि गुजरात के गीतों से विशेष अनुराग है। इन गीतों की कविता मे पुनरावृत्ति अधिक रहती है। यूरोपियन के कानो को चाहे इन संगीतों का माधुर्य न जान पड़े, परन्तु इनमें भक्ति-रस की प्रचुरता विशेष है। भगवान् बुद्ध के उपदेशों की भाति इन संगीतो में भी एक ही सरल-सत्य अनेक बार दोहराया गया है।

उदाहरण के लिये हम यहाँ आश्रम मे गाये जानेवाले पदों के कुछ उद्धरण देते हैं।

महात्माजी परम वैष्णव हैं। अतः वैष्णव-सिद्धान्तो का जिन

संगीतों में प्रतिपादन हो, वे उन्हें विशेष रुचते हैं। नरसिंह मेहता का यह गीत उन्हें बहुत ही पसन्द है—

वैष्णव-जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे।
परन्तु खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥

रात रहे उठकर गाए जानेवाले गीतों में एक यह भी है।

(राग—बहार, ताल—विलम्बित—तीन ताल)

अब हीं कासो वैर करो।
सतत पुकार प्रभु निज मुख'ते, घट-घट हौं विहरों।
आपु-समान सब जग लेखो,
श्री हरिदास कृपा ते हरि की नित निर्भय विचारों।

इस प्रकार भक्ति-रस के दूसरे भजन—'भजु रामचरन सुखदाई।' अथव 'दर्शन देना राम पियारे।' और दूसरे अन्य कई भजन उन्हें बहुत ही पसन्द हैं। भक्ति-रस के इन भजनों के साथ कुछ राष्ट्रीय गाने भी प्राय. गाए जाते हैं।

गिरफ्तार होकर आश्रम मे चलने से पूर्व प्रायः उपस्थित जनों के साथ मिलकर उन्होंने नरसिंह मेहता का—'वैष्णव जन……।' वाला गीत गाकर विदा ली है, यह गीत महात्माजी के जीवन पर और उसकी साधना के लक्ष्य पर प्रकाश डालता है, इसलिये यहां उसे दिये देते हैं—

वैष्णव-जन तो तेने कहिये जे पीड पराई जाणे रे।
परन्दु खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोक माँ सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी, असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे॥

मोह, माया व्यापे नहीं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमाँ रे।
राम नाम शुँ ताली लागी, सकल तीर्थ तेना मनमाँ रे॥
वण लोभी ने कपट-रहित छे, काम-क्रोध निवार्या रे।
भणे 'नरसैयो' तेनुं दरशन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे॥

महात्माजी के आश्रम की एक विशेषता सब आश्रम-निवासियों का सब प्रकार के कामों को अपने हाथों से करना है। आश्रम के कुछ निवासी बहुत धनी और उच्च जाति के भी हैं। इन लोगों को भी और सदस्यों की भांति घृणित समझे जानेवाले काम बारी-बारी से करने पड़ते हैं। आश्रम का प्रधान धन्धा कपड़ा बुनना है। समय का बड़ा भाग सभी सदस्य चर्खा कातने या कपडा बुनने में व्यय करते है। इसी खद्दर द्वारा महात्माजी भारत का आर्थिक और राजनैतिक उद्धार करने की आशा रखते हैं।

आश्रम से प्रायः एक मील पर साबरमती जेल है। आश्रम से जेल खूब स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सन् १९२२ के मार्च में गाँधीजी को गिरफ्तार करके यहीं लाए गए थे। महात्माजी जेल मे रहें या आश्रम मे, इससे उनके जीवन मे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। जेल यद्यपि कष्ट का स्थान है, परन्तु गाँधीजी यहाँ कहीं अधिक चैन से दिन काटते हैं। बाहर की अपेक्षा उन्हे जेल मे विश्राम के लिये अधिक समय मिलता है। महात्माजी जेल जाने पर कहा था—"मुझे यहाँ किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं, क्योंकि मेरा रहन-सहन और भोजन, आश्रम में यहां से अच्छा नहीं होना।"

गाँधीजी अपने जेल के जीवन को निरन्तर स्वाध्याय मे व्यतीत किया करते हैं। जेल के बाहर उन्हें प्राय. स्वाध्याय का समय ही नहीं मिलता। इसलिये वे जेल में इस न्यूनता को यथा-सम्भव पूरा करने का प्रयत्न किया करते हैं। ऐसा जान पड़ता है, जेल की यातनापूर्ण निर्जनता को सहने में पुस्तकें उनकी विशेष सहायक होती हैं। वे

स्वयं कहते हैं, जेल के वैचित्र्य-हीन, निरानन्द जीवन में कॉलरिज, वेन जान्सन, वाल्टर स्काट, टाल्टाय, एमर्सन, ज्यूरियो रस्किन तथा अन्य भारतीय सन्त-लेखक उनके चिर तथा निरन्तर सङ्गी बन जाते हैं। भगवद्गीता पर तो उनकी अगाध श्रद्धा है। प्रत्येक बार जेल जाने पर वे अनेक पुस्तकें नई पढ़ते हैं और अनेक की पुनरावृत्ति भी करते हैं। १६११ मे जब वे जेल में थे, तो दोपहर में वे प्राय कुरान और संध्या-समय बाइबिल का अध्ययन किया करते थे। इसी सत्याग्रह आदोलन के समय भी वे कुछ-न-कुछ नया पारायण बराबर करते होरहे।

यद्यपि महात्माजी का युवावस्था से क्रिश्चियनिटी की ओर श्रद्धा थी और भगवान् मसीह को संसार के महापुरुषो में वे बहुत ऊँचा स्थान देते थे, परन्तु इससे हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों के प्रति उनके अनुराग में कुछ भी कमी नहीं आई। यरवदा-जेल मे अपने समय का बड़ा भाग वे महाभारत के स्वाध्याय में ही लगाते थे। इसके साथ-ही-साथ उन्होंने मुहम्मद के जीवन तथा अन्य मुसलमान-लेखकों के विचारो का मनन भी किया है। योरोपियन लेखकों में-से इस बार उन्होंने जर्मन-लेखक जैकब ब्रोह्म के रहस्यवाद का अध्ययन करते रहे हैं। महात्माजी ने अपने कुछ लेखों मे इस लेखक के अनेक उद्धरणों को विशेष महत्व दिया है।

महात्माजी स्वयं लिखते हैं कि यरवदा-जेल में उर्दू और तामिल भाषाओ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्होंने काफी परिश्रम किया है। संस्कृत का भी अभ्यास वे करते रहे हैं। भारतीय-भाषाओं का उन्हे पर्याप्त ज्ञान है। जैसा कि पहले भी कह आए हैं, अपने सार्वजनिक जीवन मे काम अधिक रहने से उन्हें स्वाध्याय का समय नहीं मिलता। इसलिये उन्होंने जेल में वक्त काटने के लिये अपना समय-विभाग इस प्रकार से निश्चित् किया था, कि उन्हें

स्वाध्याय के लिये अधिक-से-अधिक मौका मिल सके और वे अपने कार्य-क्षेत्र से इस अनुपस्थिति का पूरा लाभ उठा सकें। वे लिखते हैं—"मै अपनी चौवन वर्ष की आयु मे चौबीस वर्ष के नवयुवक के समान उत्साह से पुस्तकें लेकर स्वाध्याय करने बैठता था।" अपने इस समय-विभाग के अनुसार काम करने का समय उन्हें अधिक देर तक नहीं मिला। वे जल्दी ही बीमार पड़ गए और स्वाध्याय की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक हो जाने पर उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। साहित्य और स्वाध्याय को छोड़, उन्हें पुन. राजनैतिक क्षेत्र मे अपने स्थान पर आ जाना पडा।

५

महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में धर्म-निष्ठा, सत्यजिज्ञासा और आचार-परायणता के जिस मार्ग का अवलम्बन किया है, वह एक प्रकार से उनकी प्रवृत्ति का एक अङ्ग ही है। इस प्रवृत्ति का अंकुर गाँधी मे बचपन में ही मे बो दिया गया था। मोहनदास कर्मचन्द गाँधी का जन्म १८६६ में गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर-नामक स्थान मे हुआ था। गाधीजी का बाल्य-काल पूर्णत. वैष्णव-वृत्ति और सत्य-परायणता के लिये प्रसिद्ध थे। गाँधोजी के दादा पोरबन्दर मे दीवान थे। राजा से किसी विषय मे मन-मुटाव हो जाने से उन्हे पोरबन्दर का दरबार छोड़, जूनागढ़ चले जाना पड़ा। जूनागढ के नवाब ने उन्हे आदरपूर्वक अपने यहां रख लिया। नवाब के दरबार मे उपस्थित हाने पर दीवान जी ने दाएँ हाथ से उनकी अभ्यर्थना न कर, बाएँ हाथ से उन्हें सलाम किया। कारण पूछने पर आपने उत्तर दिया—"पोरबन्दर के दरबार में चाहे मेरे प्रति कैसा ही व्यवहार क्यों न किया गया हो, पर मेरा दाहिना हाथ उनकी सेवा के लिये ही अर्पण हो चुका था।"

गाँधीजी के पिता के जीवन मे भी इसी प्रकार की घटना घटी। दरबार के साथ खटपटी होने पर उन्हे राजकोट रियासत मे चले जाना पड़ा। राजकोट मे उनका बहुत आदर हुआ और उन्हे राजा की ओर से अनेक उपहार भी मिले। एक अवसर अंग्रेज-रेजीडेण्ट ने उनकी उपस्थिति मे ही महाराज को अनुचित ढङ्ग से कुछ भला-बुरा सुना दिया। कर्मचन्द गाधी (गाधीजी के पिता) को यह नागवार गुजरा। उन्होने रेजीडेण्ट को इस धृष्टता के लिये ख़ूब फटकारा। बृटिश शासन के प्रतिनिधि के लिये यह सब कब सह्य था? उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। रेजीडेण्ट ने क्षमा माँगने के लिये उनसे कहा। परंतु वे इसके लिये राजी न न हुए। कुछ दिन पश्चात् रेजीडेण्ट को स्वयं ही उन्हे छोड देना पड़ा।

महात्माजी के पूर्वज जैनी थे। जैन-धर्म का प्रधान-सिद्धात अहिंसा है। सभी प्रकार की हत्या को घृणा की दृष्टि से देखने के कारण जैनी लोग स्वतः ही शाकाहारी होते हैं। विद्यार्थी-अवस्था में अपने सहपाठियों के आग्रह से गाधीजी पर भी नास्तिकता का प्रभाव पड़ा और वे अपने पूर्वजों के धार्मिक विश्वासो और प्रथाओं को अन्ध-विश्वास और मूर्खता समझकर उनके विरुद्ध हो गए। इस मूर्खता और अन्ध-विश्वास के प्रति विरोध के रूप मे उससे मुक्ति पाने के लिये इन लोगों ने छिपे-छिपे माँस खरीदकर खाना भी आरम्भ कर दिया। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में इस प्रसंग का वर्णन खूब स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं—"जिस दिन उन्होंने माँस खाया था, उसी रोज़ रात को उन्हे अनेक भयानक स्वप्न भी आए और उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो बकरी का बच्चा उनके पेट में बोल रहा है।" इसके बाद से जान पड़ता है, गाँधीजी ने अपने अन्ध-विश्वास से मुक्ति पाने की कोई वैसी उग्र चेष्टा नहीं की। इससे भी

बड़ा कारण इस मुक्ति-मार्ग को छोड़ देने का था—गाँधीजी की झूठ के प्रति घृणा। जब कभी वे चोरी से माँस खा आते, तो घर मे आकर भूख न लगने के उन्हे अनेक झूठे कारण उपस्थित करने पड़ते थे। इस झूठ बोलने के मानसिक क्लेश से बचने के लिये अपने 'सुधारक' सहयोगियो का साथ ही उन्होंने छोड़ दिया।

उन्हीं दिनों गाधीजी को सिगरेट भी पीने का शौक़ उठा। सिगरेट खरीदने के लिये उन्हे उधार लेना पडा। उधार का उतारना भी एक समस्या थी। इस समस्या को हल करने के लिये गाधीजी ने अपने भाई का कोई सोने का गहना चुरा लिया। करने को तो गाधीजी यह सब-कुछ कर गए, परंतु उनका हृदय ग्लानि और परिताप से खिन्न हो गया। इस अवस्था को सहन करना बालक गाधी के लिये असह्य था। उसने इस नित्य की चोरी और धोखेबाज़ी को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। उसने एक पत्र अपने पिता के नाम लिखा और अपना सब दोष स्वीकार कर लिया। उस समय उनके पिता बीमारी से बिस्तरे पर पड़े थे। गाधीजी ने उसी अवस्था मे वह पत्र पिता के हाथ मे दे दिया।

पिता ने पत्र को पढा, तो उनकी आखों मे आंसू छलक आए। पुत्र के सामने ही एक भी शब्द कहे बिना पिता ने वह पत्र फाड़कर फेक दिया। गाधीजी पर पिता के इस व्यवहार का बहुत गहरा प्रभाव पडा। वे लिखते हैं—"सबसे पहले इसी घटना से मुझे अहिंसा की सार्थकता पर विश्वास हुआ।"

महात्माजी अपने आत्म-चरित्र की कथा में लिखते हैं—"स्कूल मे पढते समय मैंने अपने हस्ताक्षर के विषय मे जो उपेक्षा की है, उसका उपाय मै अभी तक नहीं कर सका हूँ।" इङ्गलैण्ड में उनका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने अभ्यास भी बहुत किया, परन्तु कुछ विशेष फल न हो सका।

स्कूल में पढ़ते समय विवाह हो जाने से बालक गांधी का प्रायः एक वर्ष व्यर्थ नष्ट हो गया। इससे उन्हे स्कूल में बहुत कष्ट होता था। पर ज्यों-त्यों वह एक श्रेणी चढ़ ही गए। रेखा-गणित में गांधीजी को आरम्भ मे बहुत कठिनाई अनुभव होती थी। एक प्रकार से उसे समझना उनके लिये तो असम्भव-सा ही था। पर अचानक यूक्लिड के तेरहवें प्रश्न पर पहुँचते ही उन्हें कुछ ऐसा उद्भास हुआ कि रेखा-गणित न केवल उन्हे सरल जान पड़ने लगी, वरन् सरल तर्क के प्रयोग के कारण उसमे उन्हे विशे- आनंद भी आने लगा।

संस्कृत के अभ्यास मे भी उन्हे विशेष कठिनता होती थी शब्दों और नियमो के बिना समझे कण्ठ-ग्रस्थ करना उनके लिये कठिन था। संस्कृत मे पास होना उनके लिये मुश्किल हो गया। एक दफा तो तङ्ग आकर उन्होंने इस विषय को छोड़कर फारसी ले लेने का विचार भी तय कर लिया, परन्तु अध्यापक ने समझाया कि वैष्णव का पुत्र होने के नाते से संस्कृत का पढ़ना उनके लिये आवश्यक है गाँधीजी ने बहुत परिश्रम करके ज्यों-त्यों थोड़ी-बहुत सस्कृत सीख ली

सन् १८८७ मे एण्ट्रेन्स की परीक्षा समाप्त कर, गांधीजी कालेज मे दाखिल हो गए। परन्तु उसमे उन्हे विशेष सफलता न हुई। एक वृद्ध के परामर्श से उन्होने बैरिस्टरी के लिये इङ्गलैण्ड जाने का विचार किया। परन्तु उनकी माता इस धर्म-विरुद्ध कार्य के लिये सहमत न हुईं। आखिर गाँधीजी ने एक ब्राह्मण के सम्मुख विदेश मे रहते हुए भी मद्य-माँस तथा स्त्री-सङ्ग से परहेज करने की प्रतिज्ञा करने पर उन्हे माता से विदेश जाने की आज्ञा मिल गई।

गाधीजी की अपनी इच्छा डाक्टर बनने की थी। परंतु उनके बड़े भाई ने पिता की इच्छा के अनुकूल इस विषय के अध्ययन

करने के लिये मना किया। गांधीजी के पिता पक्के वैष्णव थे। उनके विचार मे किसी वैष्णव के लिये मुर्दा शरीरों को भी काटना-छांटना अनुचित था। पिता का यद्यपि देहान्त हो चुका था, परन्तु गांधी जी ने मृत पिता की इच्छा की अवहेलना करना उचित न समझा।

अपने नवजात शिशु और स्त्री को छोड़कर गांधीजी बम्बई चले गए। और यहा वे काफी समय ठहरकर जहाज-द्वारा इङ्गलैण्ड के लिये रवना हो गए। जहाज पर पैर रखते ही उन्हे कठिनाइयों का सामना करना पडा। वे स्वभाव से ही संकोची और लजाधुर थे। अपरिचित यूरोपियन लोगों से मिलते-जुलते उन्हे बहुत संकोच होता था। यहा तक कि वे अपना भोजन भी अपने कैबिन में ही मँगवाकर अकेले में खाते थे। इसका एक कारण यह भी था कि इन्हे काटे-छुरी चलाने का अभ्यास उस समय न था।

लण्डन पहुँचकर गाधी को घर की बहुत याद आने लगी। प्राय. वे रात-भर आसू-भरी आंखों से करवटें बदलते रहते। लण्डन के इतने बडे जनसमुदाय मे उनका कोई परिचित अथवा सुहृद् न था। वे अपने-आपको सर्वथा निराश्रय और आधीन-सा अनुभव करते थे। उन्हें मनचाहा निरामिप भोजन प्राप्त करने मे बहुत कठिनाई अनुभव होती थी। अनेक कठिनाइयों के सामने आने पर भी उन्होने इङ्गलैण्ड मे तीन वर्ष बिताकर बैरिस्टर बन-कर ही लौटने का निश्चय किया। एक रोज वे कई दिन तक ठीक भोजन न पा सकने के कारण, बाज़ार मे अत्यन्त खिन्न और विपराण भाव से फिर रहे थे, उस समय एक निरामिप भोजनालय उन्हें मिल गया। इसे देखकर गाधीजी ऐसे प्रसन्न हुए, मानो स्वर्ग मे पहुँच गए हों।

कुछ दिन पश्चात् गांधी एक निरामिप-सभा के सदस्य बन गए, और निरामिष भोजन का प्रचार करने लगे। यह सब लोग जानते

हैं कि गांधीजी राजनैतिक क्षेत्र के एक प्रभावशाली वक्ता हैं, परंतु यह बहुत कम लोग जानते होगे, कि इस प्रभावशाली वक्ता ने अपनी पहली वक्तृता एक निरामिष-सभा के अधिवेशन में दी थी और वहा वे अपने प्रयत्न में असफल रहे थे।

इङ्गलैंड मे कानून पढने के साथ गाधीजी अपना कुछ समय धार्मिक पुस्तको के स्वाध्याय में भी व्यतीत किया करते थे। धार्मिक पुस्तकों की ओर उनकी प्रवृत्ति होने का कारण उनका थियोसोफिस्ट लोगो के साथ का सत्सग था। इङ्गलैड मे आकर ही गाधजी ने पहले-पहल भगवद्गीता का अध्ययन किया था। थियोसोफिस्ट लोगों का साथ होने से उनका परिचय श्रीमती ऐनी वेसेएट और मैडम ब्लेवेस्टकी से भी हो गया था। एक मित्र के प्रभाव से गाधी जी ने इसी समय वाइविल भी पढ़ना आरम्भ कर दिया था।

१८ जून १८६१ को गांधीजी ने कानून की परीक्षा दी और उसके दो दिन पश्चात् ही वे भारत के लिये जहाज पर सवार हो गए। वम्बई मे पहुँचते ही उन्हे अपनी माता की मृत्यु का समाचार मिला। जिस समय गाधीजी इङ्गलैड मे थे, उसी समय उनकी माता का स्वर्गवास हो गया था। परन्तु परीक्षा निकट होने के कारण उनके सम्वन्धियो ने उनसे यह शोक-समाचार छिपाए रक्खा।

कुछ दिन पश्चात् गाधीजी वम्बई में आकर रहने लगे। यहा उनका परिचय 'कवि राजचन्द्र जौहरी' से हो गया। कवि राजचन्द्र जौहरी रहस्यवादी कवि थे। गाधीजी पर उनका गहरा प्रभाव पडा है। महात्माजी लिखते हैं—"यद्यपि मैं राजचन्द्र को गुरु-पद नहीं दे सकता। परन्तु जितनी आध्यात्मिक शान्ति मुझे उनके सङ्ग से प्राप्त हुई है, और स्थान से नहीं हुई है।" महात्माजी को भारतीय संस्कृति मे गुरु-पद पर वहुत श्रद्धा है, और वे इसे मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिये विशेष महत्व-पूर्ण वस्तु समझते हैं।

उनका विश्वास है कि 'गुरु के बिना सत्य-ज्ञान असम्भव है। साधारण सांसारिक विषयों में तो हम जैसे-तैसे किसी भी व्यक्ति से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र मे पहुँचते हुए व्यक्ति को ही पथ-प्रदर्शक बनाना आवश्यक है। गुरु प्राप्त करने के लिये पहिले अधिकारी बनना चाहिए। अधिकारी बनना और गुरु की खोज करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।'

अपनी 'आत्म-कथा' में महात्माजी ने एक स्थान पर लिखा है, कि—'आधुनिक काल के तीन व्यक्तियों ने मुझपर गहरा प्रभाव डाला है। राजचन्द्र अपने जीवन से, और टाल्सटाय और रस्किन अपनी पुस्तकों से मेरे जीवन-मार्ग पर अपनी गहरी छाया डाल गए हैं।'

बम्बई में गांधीजी ने वकालत आरम्भ की और कुछ समय बहुत परिश्रम से काम करते रहे। इस समय भी उनकी प्रवृत्ति सत्य की खोज की ओर ही निरन्तर बढ़ रही थी। उनके शत्रु और मित्र एक-समान उनके वचनों पर विश्वास रखते थे। अनेक अवसरो पर मुकदमे की वकालत करते समय जब कभी उन्हें यह विश्वास हो जाता कि उनके आसामी का पक्ष असत्य और अन्याय की ओर है, उन्होंने तुरन्त उसका मामला वहीं छोड़ दिया। वे सदा अपने आसामी को यह समझा देते थे कि मुकदमे की सचाई में सन्देह होने पर अथवा यह जानने पर कि उनसे सत्य छिपाया गया है, वे वकालत न कर सकेंगे। अपने जीवन में उन्होंने कभी किसी ऋणी के विरुद्ध मुकदमे की पैरवी नहीं की। उनका विश्वास है, कोई भी मनुष्य सामर्थ्य होने पर, यदि वह ईमानदार है, तो कभी अपना ऋण चुकाने से इन्कार न करेगा।

सन् १९०८ में महात्माजी पर एक धर्मान्ध मुसलमान ने भयङ्कर आक्रमण किया। उस समय बड़ी कठिनता से उनकी प्राण-

रक्षा हो सकी। कुछ मित्रों ने उस मुसलमान पर मुकद्दमा चलाने की सलाह दी, पर गांधीजी ने इससे इन्कार कर दिया। यहां तक कि वे उसके विरुद्ध अदालत में गवाही देने को भी तैयार न हुए। जिस समय वे घायल अवस्था में खाट पर पड़े थे, उस समय उन्होंने अपने मित्रों से उस मुसलमान के सम्बन्ध में कुछ भी न करने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'यह मनुष्य नहीं जानता, कि वह क्या कर रहा है। इसने जो कुछ उचित समझा, वही किया। इसके विचार में मैं अन्याय कर रहा था। मुझे रोकने के लिये जो कुछ इसके सामर्थ्य और ज्ञान में था, इसने किया। इसे क्षमा करना उचित है। मुझे इसकी मनुष्यता पर विश्वास है, मैं इससे प्रेम करता हूँ, और प्रेम द्वारा ही इसके हृदय को जीत लूँगा।'

लोग समझते थे यह असम्भव है, परन्तु महात्माजी की उदारता के एक वर्ष पश्चात् इस मुसलमान ने गाँधीजी को पत्र लिखकर सिर झुका दिया, और अपनी भूल के लिये क्षमा माँगी। उसने लिखा—'मेरे हृदय मे आपकी ओर अनन्त श्रद्धा, तथा विचारों और उद्देश्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। जिस प्रकार भी सम्भव हो, मैं आपकी सेवा के लिये तैयार हूं।'

महात्माजी अन्याय और बुराई का उपाय केवल प्रेम से करना चाहते हैं। तीन अवसरों पर आवेश से पागल जन-समूह ने उन पर अत्यन्त निर्दयता से आक्रमण किया। एक बार तो वे बहुत बुरी तरह घायल होकर मूर्छित भी हो गए थे, और लोग उन्हे गंदी गली में फेंककर चलते बने थे। गाँधीजी ने इन लोगों के प्रति क्रोध नहीं किया। गाँधीजी छः दफे जेल जा चुके हैं। जेल में भी उनका व्यवहार अधिकारियों के प्रति सौजन्य और मित्रता का रहा है। जोहन्सबर्ग (दक्षिण-अफ्रीका) और यरवदा-मन्दिर दोनों ही स्थानों के जेलखानों में गांधीजी जेल के सभी कठोर नियमों का पूर्ण-रूप

से पालन किया है और उनके मुख से कभी भी एक शब्द शिकायत या विद्रोह का नहीं निकला। जेल में भी वे सदा प्रसन्न और प्रफुल्ल रहते थे। अन्य क़ैदियों को भी वे वार्डरों और दूसरे अधिकारियों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने के लिये उपदेश दिया करते। महात्मा गाँधी कहते हैं—"अपने आत्म-सम्माम के लिये जेल के कठोर नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिये।"

महात्माजी जिसप्रकार जेल के बाहर सभी प्रकार के ऐश-आराम से दूर रहते हैं, उसी प्रकार जेल मे जाकर भी उन्होंने किसी प्रकार के विशेष व्यवहार या आदर को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। जेल में अन्य क़ैदियों के साथ जैसा व्यवहार होता था, गाँधीजी स्वयं भी उसी ढंग से रहते थे। गाधीजी ने अपने मित्रों और स्वजनो को जेल में उन्हें मिलने के लिये मना कर दिया था, क्योंकि जेल के क़ानून के अनुसार अपने सम्बन्धियों या मित्रों से मिलने का उन्हें कोई भी अधिकार नहीं था। महात्माजी जेल जाने को अपनी तपश्चर्या और साधना का एक अंग समझते हैं। इसलिये किसी भी प्रकार की रियायत लेकर, वे इसके प्रभाव और महत्व को कम नहीं कर देना चाहते।

महात्माजी के विरोधी भी यह माने विना नहीं रह सकते, कि उनके जीवन में स्वार्थ का लेश भी नहीं है, और वे सदा अपनी आत्मा की पुकार का अनुगमन करते हैं। मद्रास के प्रधान पादरी ने अपने व्याख्यान मे स्पष्ट कहा था—'यद्यपि मुझे कहते दुःख होता है, परन्तु मैं सत्य ही कहूँगा। महात्मा गाँधीजी उन अंग्रेजों की अपेक्षा जो उन्हे जेल मे डाले हुए हैं—मनुष्यों के पथ-प्रदर्शक भगवान् मसीह के कहीं अधिक अनुआ हैं।'

टैगोर गाँधीजी के विषय में लिखते हैं—'गाँधीजी त्याग की मूर्ति हैं। उन्हें न शक्ति की इच्छा है, न धन की, और न सम्मान

की। उनकी आत्मा प्रतिदान की आशा के बिना, सदा देने के लिये आतुर रहती है। उनकी स्थिर-बुद्धि और धारणा को जेल और मृत्यु का भय भी विचलित नहीं कर सकता।'

हरिजन आन्दोलन के लिये कुछ समय यरवदा जेल से उन्हें पत्र-व्यवहार तथा 'हरिजन' के लिये लेख-आदि भेजने की रियायत मिली थी। पर उनके अधिक कमजोर हो जाने के कारण सरकार ने उनको नजरबंदी से मुक्त कर दिया। पुनः वे सत्याग्रह कर जेल गए। उस समय उन्हें साधारण कैदियों की भाँति रहना पड़ा और उन्हें हरिजन आंदोलन के लिये जो रियायतें पूर्व मिल चुकी थी, उसी के लिये सरकार से आग्रह करना पड़ा। उनका कहना था कि जिस प्रकार सत्याग्रह उनका दाहिना हाथ है, इसी प्रकार हरिजन कार्य भी उनका बाया हाथ है। यह मामला यहां तक बढ़ता गया कि महात्माजी को अनशन कर अपने प्राण की बाजी तक लगानी पड़ी, जिसके कारण सरकार को बिना किसी शर्त लगाए उन्हें जेल से मुक्त कर देना पड़ा। जेल से इस प्रकार मुक्त हो जाने पर भी महात्माजी ने अपने को उस मीयाद तक कैदी ही समझा और केवल हरिजन आन्दोलन में प्रत्यक्ष कार्य करने के सिवा ३१ जुलाई सन् १९३४ तक राजनीति मे कोई भाग न लिया।

६

अनेक भारतीय और युरोपियन लेखकों ने महात्मा गाँधी और प्रभु मसीह के चरित्रों की तुलनात्मक आलोचना की है, और साबरमती के जुलाहे और नजारेथ के बढ़ई के लड़के मे साम्य दिखाने का प्रयत्न भी किया है। अङ्गरेज-जज ब्रूमफील्ड, जिन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल न्यायाधीश होने की वजह से महात्मा जी को जेल भेजे जाने का दण्ड दिया था—की उपमा पोण्टियस पाइलेट से दी है। देवी सरोजनी लिखती हैं—'भारत की स्वतंत्रता के दूत विनम्र परन्तु दुर्जेय देवदूत का उपमेय, यदि संसार के इतिहास मे कहीं है, तो वह नजारथ का मधुर और कोमल ईसा है!' यह तो अङ्गरेज-पत्रों ने भी स्वीकार किया है, अदालत मे गाधीजी के व्यवहार का उदाहरण यदि कहीं इतिहास में मिलता है, तो वह केवल नजारथ मे प्रभु मसीह का अभियोग है।

सभी लोग, क्या गाधी के अनुयायी और क्या उनके प्रतियोगी, उनके महत्त्व और बड़प्पन के आगे सिर झुकाते हैं। 'गाधी वह व्यक्ति है, जो ससार के इतिहास मे अमर रहेगा, और स्वर्ग में भगवान बुद्ध, सुकरात और मसीह के साथ आसीन होगा। स्वर्गीय

देशबन्धुदास राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी के प्रतियोगी थे। महात्मा गाधी ने देशबन्धु के लिये मैदान छोड़ देना स्वीकार कर लिया था।......वही देशबन्धु महात्मा जी के विषय मे लिखते हैं—"यदि हम गाँधजी की तुलना का व्यक्ति देखना चाहते हो, तो हमें आज से दो हजार वर्ष पूर्व के इतिहास की झाँकी लेनी पडेगी। गाँधी, संसार के इतिहास मे निस्सन्देह सबसे बडे महापुरुष है। आज जो महात्माजी का विरोध कर रहे हैं, कल उन्हें भी उनके सम्मुख सिर झुकाना पडेगा।'

सुदूर न्यूयार्क मे बैठे हुए इसाइयो के प्रमुख नेता जे० एच० होम्स कहते हैं—यदि मुझे भगवान मसीह के पुनरागमन में विश्वास है, तो मैं पूर्ण निश्चय से कह सकता हूँ—भगवान ने महात्मा गाँधी के रूप मे अवतार धारण किया है। मेरे इस विश्वास के कारण, गाँधीजी के चरित्र पर मसीह का प्रभाव नहीं—वरन् गाँधीजी की अपनी चमत्कारिक आध्यात्मिक शक्ति और उसका अनुकरणीय जीवन है। महात्माजी आत्मा मसीह की आत्मा है। उसकी आभ्यान्तरिक ज्योति और पवित्रता, उसकी नम्रता और दृढता उसकी गहरी और व्यापक आत्मीयता, उसका महान् आदर्श, परमात्मा की ओर उसकी वृत्ति, मनुष्य में उसका दृढ़ निश्चय देखकर मुझे यह विश्वास होता है, भगवान् मसीह की आत्मिक शक्ति गाँधीजी ने के शरीर में पृथ्वी पर पुनः शरीर धारण किया हैं।'

महात्माजी की व्यापक सहानुभूति भी उपेक्षा करना असम्भव है। जाति-पाँति की कठिन सीमा को लाँघकर वह प्रायः मन्दिर की सीढ़ियों और गलियों मे बैठे हुए कोढ़ियों के घावों को अपने वस्त्रों से पोंछने के लिये ठहर जाते हैं। महात्माजी के सम्पूर्ण कष्ट-सहन और त्याग का रहस्य उनकी व्यापक सहानुभूति और सहृदयता ही है। किसी के कष्ट को देख, उसकी उपेक्षा करके स्वयं सुखी होने

का प्रयत्न करना, गाँधीजी के लिये सम्भव नहीं। गाँधीजी के त्याग में, और एक मोक्षाभिलासी तपस्वी के त्याग में यही अन्तर है। गाँधी का त्यागपर-हित के लिये है, और योगी का त्याग स्वयं अपनी आध्यात्मिक उन्नति के इच्छा से है। एक ओर पूर्ण त्याग है, दूसरी ओर त्याग की तह मे वास्तविक और गहरा स्वार्थ है।

गाँधीजी की पोशाक, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, केवल खद्दर का एक अंगोछा-मात्र है। उन्होंने निर्धनों के इस वेश को इस मतलब से अपनाया है, कि कोई भी मनुष्य उनके आगे अपनी निर्धनता के कारण लज्जित न हो। स्वयं व्रत रख और क्षुधा की यातना सहकर वे सदा उस कष्ट का अनुभव करते रहते हैं, जिसे उनके करोड़ों देश-वासी सह रहे हैं। इस प्रकार कष्ट सहकर, वे अन्य लोगों के कष्ट सहन से जो पाप का मैल उनकी आत्मा पर चढ़ता है, उसका उपाय करते रहते हैं। भगवान् बुद्ध की भाति उन्होंने संसार के कष्ट को अपना कष्ट मान लिया है। उनके जीवन का उद्देश्य है—'दुखियो का दुख निवारण करना।'

युवावस्था के अनुभवों ने महात्माजी के जीवन को एक नियमित मार्ग पर डाल दिया है। महात्माजी अपने जीवन की एक विशेष महत्वपूर्ण घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"उस समय मै प्राय' १२ वर्ष का रहा हूँगा. मेहतर ऊका हमारे घर का पाखाना साफ करने आया करता था। अनेक वार मैंने अपनी माता से पूछा—'तुम ऊका को छूने से क्यो मना करती हो? उसके छूने मे क्या बुराई है?' जब कभी मैं उससे छू जाता, मुझे नहाना पड़ता था। नहा तो मै लेता जरूर था, परन्तु सदा ऐसा करने से एतराज भी जरूर करता था। मुझे यह समझ न आता, कि मनुष्य के लिये मनुष्य को छूना अधर्म क्योकर हो सकता है? यों तो, मैं माता पिता की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करता था, परंतु

उक्का को छूने के विषय में माँ से मेरा झगड़ा सदा जारी रहता।'

भारत के अछूतों के प्रति जो अन्याय चिरकाल से होता चला आया है, उसे गाँधीजी इसी अवस्था मे अनुभव करने लगे थे। हिंदू धर्म की इस निर्दयता के कारण उन्हें अपने पूर्वजों के धार्मिक विश्वासों के प्रति घृणा होने लगी थी। उन्होंने ईसाई-मत तथा अन्य मतों की पुस्तकें पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक वे ईसाई तथा हिंदू-मत के दरम्यान त्रिशंकु की भांति लटकते रहे। आत्म-चिंतन और स्वाध्याय के पश्चात् उन्हें निश्चय हो गया कि मुक्ति का सरल मार्ग हिंदू-मत ही है। हिंदू-मत में विश्वास और श्रद्धा हो जाने पर भी अछूतवाद को वे स्वीकार न कर सके। हिंदू-जाति मे इस प्रथा का होना वे सबसे बड़ा कलङ्क समझते हैं। अछूतवाद को वे हिंदू-मत का आवश्यक अङ्ग नहीं मानते। वे लिखते हैं—"मेरी सम्मति मे मनुष्य के प्रति मनुष्य का घृणा करना कभी न्याय नहीं हो सकता। यदि कोई आध्यात्मिक गुरु भी इस प्रकार की आज्ञा दें, जो मेरी बुद्धि के प्रतिकूल हो, तो मैं उसे भी निस्सङ्कोच अस्वीकार कर दूँगा। अधिकार और शक्ति का प्रयोजन केवल दलितों और निर्बलों की सहायता करना है। सद्बुद्धि का साथ छोड़ देने पर, आत्मा की तुच्छ पुकार की अवहेलना करने पर ही अधिकार और शक्ति अन्याय के मार्ग का अवलम्बन कर सकते हैं।"

गाँधीजी सरे-आम निर्भय होकर कहतेहैं—"यदि मुझे यह निश्चय हो जाय, कि 'अछूतवाद' हिंदू-धर्म का आवश्यक अङ्ग है, तो मैं यही प्रयत्न करूँगा कि सम्पूर्ण देश ईसाई-मत या इस्लाम को कबूल कर ले।" उनका दृढ़ निश्चय है, अछूतवाद न तो हिंदू धर्म का अंग है और न उसके अनुकूल ही है। वे इसे समय की गति के कारण समाज में आया हुआ एक दोष समझते हैं। यदि

कहीं स्मृतियों में इसका प्रतिपादन है, तो वह प्रक्षिप्त है। सभी स्मृतियों और शास्त्रों में क्षेपक की सम्भावना रहती है। वे कहते हैं, स्मृतियों की अपेक्षा बुद्धि और तर्क अधिक विश्वास के योग्य है। महात्माजी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। वे उनके शब्दों की नहीं, बल्कि भाव की पूजा करते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य को मनुष्य के प्रति घृणा का उपदेश कभी नहीं दे सकता।

महात्माजी-द्वारा प्रतिपादित हिंदू-मत मे तथा प्राचीन प्रथाओं में जितना अंतर है, यह मनुस्मृति से उनके विचारों की तुलना करने पर स्पष्ट हो सकेगा। मनुस्मृति ने लिखा है—"ब्रह्मा ने संसार के कल्याण के लिये अपने शरीर से चार वर्णों की सृष्टि की। मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पाँव से शूद्र को उत्पन्न किया।" अन्यत्र लिखा है—'ब्राह्मण का नाम सौभाग्य का, क्षत्रिय का नाम शक्ति और सामर्थ्य का, वैश्य का नाम धन का वर्द्धक है। परंतु शूद्र घृणा के योग्य तथा त्याज्य है। ब्राह्मण कल्याण करनेवाला, क्षत्रिय रक्षा करनेवाला, वैश्य पालनेवाला, तथा शूद्र सेवा करने के लिये है। ब्राह्मण सत्व-गुण से युक्त अंधकार से युक्त होकर तमोगुणी होते हैं।"

गाँधीजी अंध-विश्वास को छोड़, शुद्ध-तर्क और न्याय-बुद्धि का आश्रय लेते हैं। उनका कहना है—"भारत के दुख-दारिद्र्य और पराभव का कारण भारत में अछूतवाद का होना ही है। हिंदू-धर्म ने मनुष्यता के प्रति इस अन्याय को सहन करके भारत को दीन लाचार बना, स्वतंत्रता के अयोग्य बना दिया है। हमलोगों के संसार की दृष्टि में अपमानित और तिरस्कृत होने का कारण यही है कि हमने जाति के पाँचवें भाग के साथ घृणा और निरादर का व्यवहार किया है। हमने इन्हें अपना दास बनाकर इनके प्रति

भारी अन्याय किया है और उनके प्रति जितना अन्याय और निर्दयता करते हैं, उसकी तुलना में, बृटिश साम्राज्य की अधीनता में जो व्यवहार हम भारतीयो के साथ हो रहा है, वह कुछ भी नही है। हम उन्हे वन्य-पशुओ की भाति अपने से दूर रखते हैं। वे हमारे कुओं से जल नहीं भर सकते। हमारी पाठशालाओं में उनके बालक नहीं पढ़ सकते। वे हमारे पूजा के स्थानों मे नहीं जा सकते। हमने उन्हे पद-दलित और मृतक-समान बना दिया है। हम सब अपराधी हैं। हमने समाज के अंग के साथ घोर अन्याय किया है। हम उन्हे अपने सम्मुख पेट के बल रेंगने और नाक रगड़ने के लिये विवश कर रहे हैं। वह कौन-सा अन्याय है, जो हमारी समाज ने अछूतो और अन्त्यजो के प्रति नहीं किया? आप ही बताइये, जब हम स्वयं अपने ही भाइयों के प्रति यह व्यवहार करते हैं, तो बृटिश सरकार को दोष देने का हमे क्या अधिकार है?"

महात्माजी सैकड़ों मर्तबा यह कह चुके हैं—जब तक भारतवासी अपने अछूत कहलानेवाले भाइयो के प्रति न्याय और समानता का व्यवहार नहीं करते, तब तक वे न तो स्वराज्य और स्वतन्त्रता के अधिकारी हैं और न उन्हे अपने इस उद्देश्य मे सफलता प्राप्त होने की सम्भावना ही हो सकती है। जब तक हम स्वयं अन्याय और अत्याचार करना बन्द नहीं करते, हमे इसके विरुद्ध आवाज उठाने का क्या अधिकार है? जब तक हम एक भी व्यक्ति के प्रति किए गए अत्याचार को सहने के लिये तैयार हैं, हमारा स्वराज्य के लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब तक हम अछूतवाद की अमानुषिक प्रथा का पूर्ण बहिष्कार न कर दें, हमें अपने-आपको मनुष्य कहलाने का कोई अधिकार नहीं।"

अछूतों का प्रश्न सदा से ही महात्माजी के हृदय मे शूल के

समान कलंक पैदा करता रहा है। अपने राजनैतिक कार्यक्रम में उन्होंने इस प्रश्न को सदा ही विशेष महत्व दिया है। एक अवसर पर खिन्न होकर उन्होंने यहाँ तक कहा था—"मैं चाहता हूँ, मेरा जन्म किसी अछूत-परिवार में होता। मैं उनके दु:ख, क्लेश और यंत्रणा को भली प्रकार अनुभव कर, उस अन्याय और अत्याचार के विरोध में शक्ति-भर आवाज उठा सकता।"

महात्माजी के आश्रम में अछूत-परिवार की एक लड़की है। वह महात्माजी के परिवार में रहती है। उसका नाम लक्ष्मी है। महात्माजी के एक अन्तरङ्ग मित्र का कहना है, लक्ष्मी केवल अछूत-परिवार की एक बालिका-मात्र ही नहीं है, वह हमारे देश के सात करोड़ पद-दलित, अछूत कहलानेवाले भाइयों की प्रतिनिधि है।

महात्मा गाँधी यरवदा जेल में बैठे हुए भी इन अन्याय पीड़ित भाइयों को नहीं भूल सके। न केवल वे सदा लक्ष्मी के विषय में ही पूछ-ताछ किया करते थे, बल्कि हिंदू-जनता मात्र के सम्मुख इस आधुनिक प्रथा को हटाने के लिये उन्होंने अनेक सन्देश भेजे। स्वयं एक वर्ष घूम-फिर कर भारत के कोने-कोने में इसके विरोध में बुलंद आवाज भी उठाई है।

जिस समय यरवदा जेल में श्री कस्तूरीबाई उनसे मिलने गईं, महात्माजी ने उनके हाथ भी यही संदेश भेजा............"किसी को अछूत मत समझो, इन्हें अपने कुओं से जल लेने दो। इनकी सन्तान को अपनी पाठशालाओं में पढ़ने दो। इन्हें पूजा-स्थानों में जाने का अधिकार दो। इन्हें अपना जूठा और अखाद्य भोजन मत दो। मनुष्य के साथ मनुष्य-जैसा व्यवहार करो। किसी मनुष्य को अछूत समझकर उससे घृणा करना अक्षम्य अपराध है।"

महात्माजी ने राजनैतिक क्षेत्र में अछूतों के महत्वपूर्ण प्रश्न पर समुचित ध्यान दिया है। वे स्वयं इन लोगों के समीप गए, उनमें

भारी अन्याय किया है और उनके प्रति जितना अन्याय और निर्दयता करते हैं, उसकी तुलना में, बृटिश साम्राज्य की अधीनता में जो व्यवहार हम भारतीयों के साथ हो रहा है, वह कुछ भी नहीं है। हम उन्हें वन्य-पशुओं की भांति अपने से दूर रखते हैं। वे हमारे कुओं से जल नहीं भर सकते। हमारी पाठशालाओं में उनके बालक नहीं पढ़ सकते। वे हमारे पूजा के स्थानों में नहीं जा सकते। हमने उन्हें पद-दलित और मृतक-समान बना दिया है। हम सब अपराधी हैं। हमने समाज के अंग के साथ घोर अन्याय किया है। हम उन्हें अपने सम्मुख पेट के बल रेंगने और नाक रगड़ने के लिये विवश कर रहे हैं। वह कौन-सा अन्याय है, जो हमारी समाज ने अछूतों और अन्त्यजों के प्रति नहीं किया? आप ही बताइये, जब हम स्वयं अपने ही भाइयों के प्रति यह व्यवहार करते हैं, तो बृटिश सरकार को दोष देने का हमें क्या अधिकार है?"

महात्माजी सैकड़ों मर्तबा यह कह चुके हैं—जब तक भारत-वासी अपने अछूत कहलानेवाले भाइयों के प्रति न्याय और समानता का व्यवहार नहीं करते, तब तक वे न तो स्वराज्य और स्वतन्त्रता के अधिकारी हैं और न उन्हें अपने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त होने की सम्भावना ही हो सकती है। जब तक हम स्वयं अन्याय और अत्याचार करना बन्द नहीं करते, हमें इसके विरुद्ध आवाज उठाने का क्या अधिकार है? जब तक हम एक भी व्यक्ति के प्रति किए गए अत्याचार को सहने के लिये तैयार हैं, हमारा स्वराज्य के लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब तक हम अछूतवाद की अमानुषिक प्रथा का पूर्ण बहिष्कार न कर दें, हमें अपने-आपको मनुष्य कहलाने का कोई अधिकार नहीं।"

अछूतों का प्रश्न सदा से ही महात्माजी के हृदय में शूल के

समान कसक पैदा करता रहा है। अपने राजनैतिक कार्यक्रम में उन्होंने इस प्रश्न को सदा ही विशेष महत्व दिया है। एक अवसर पर खिन्न होकर उन्होंने यहाँ तक कहा था—"मैं चाहता हूँ, मेरा जन्म किसी अछूत-परिवार मे होता। मैं उनके दु:ख, क्लेश और यंत्रणा को भली प्रकार अनुभव कर, उस अन्याय और अत्याचार के विरोध में शक्ति-भर आवाज उठा सकता।"

महात्माजी के आश्रम में अछूत-परिवार की एक लड़की है। वह महात्माजी के परिवार में रहती है। उसका नाम लक्ष्मी है। महात्माजी के एक अंतरङ्ग मित्र का कहना है, लक्ष्मी केवल अछूत-परिवार की एक बालिका-मात्र ही नही है, वह हमारे देश के सात करोड़ पद-दलित, अछूत कहलानेवाले भाइयों की प्रतिनिधि है।

महात्मा गाँधी यरवदा जेल में बैठे हुए भी इन अन्याय पीड़ित भाइयों को नहीं भूल सके। न केवल वे सदा लक्ष्मी के विषय में ही पूछ-ताछ किया करते थे, बल्कि हिंदु-जनता-मात्र के सम्मुख इस आधुनिक प्रथा को हटाने के लिये उन्होंने अनेक सन्देश भेजे। स्वयं एक वर्ष घूम-फिर कर भारत के कोने-कोने में इसके विरोध में बुलंद आवाज़ भी उठाई है।

जिस समय यरवदा जेल में श्री कस्तूरीबाई उनसे मिलने गईं, महात्माजी ने उनके हाथ भी यही संदेश भेजा............"किसी को अछूत मत समझो, इन्हें अपने कुओं से जल लेने दो। इनकी संतान को अपनी पाठशालाओं में पढ़ने दो। इन्हें पूजा-स्थानों में जाने का अधिकार दो। इन्हे अपना जूठा और अखाद्य भोजन मत दो। मनुष्य के साथ मनुष्य-जैसा व्यवहार करो। किसी मनुष्य को अछूत समझकर उससे घृणा करना अक्षम्य अपराध है।"

महात्माजी ने राजनैतिक क्षेत्र में अछूतों के महत्वपूर्ण प्रश्न पर उचित ध्यान दिया है। वे स्वयं उन लोगों के समीप गए, उनसे

मिले और उन्हें उचित परामर्श दिया। उनके असहयोग के कार्य-क्रम में अछूतो को समान अधिकार—समान स्थान प्राप्त है। अनेक अवसरों पर सर्व-साधारण जनता के सम्मुख उन्होंने अछूतों से असहयोग-आन्दोलन मे भाग लेकर अपनी शक्ति दिखलाने को भी कहा है। दूसरी ओर उन्होने हिंदुओ से भी स्पष्ट कह दिया है—“यदि आप लोग असहयोग-आंदोलन में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपके लिये यह आवश्यक है कि आप अछूतों को सम्पूर्ण अधिकार देकर उन्हें अपने साथ मिलाएँ। विदेशी शासन के विरुद्ध आपका असहयोग तभी पूर्णतया सफल हो सकेगा, जब आप पहिले देश के सभी अङ्गो को पूर्ण तथा दृढ़ सहयोग प्राप्त कर लेंगे।



सभी दीन-दुखियों और अन्याय-पीड़ितों के लिये गाँधीजी अपने सगे हैं। भारत की वेश्याएँ तक अपने उद्धार के लिये उनसे आशा रखती हैं। गाँधीजी के हृदय में इन उत्पीड़ित और निरादृत स्त्रियों के लिये भी गहरी सहानुभूति और मर्म-वेदना का स्थान है। वे उन्हें पतित बहनों के नाम से पुकारते हैं। गाँधीजी अपनी शक्ति-भर सदा इन स्त्रियों की सहायता के लिये तैयार रहते हैं।

जब गाँधीजी बारीसाल गए, तब वहां के चकलों की प्रायः एक-सौ स्त्रियाँ महात्माजी से मिलने आईं। अपनी दुखी तथा आर्त्त-अवस्था का वर्णन कर, उन्होंने गाँधीजी से उद्धार का उपाय पूछा। इन स्त्रियों की दयनीय अवस्था देख, महात्माजी का हृदय बहुत खिन्न हुआ। वे लिखते हैं—"इन बहनों से बात करने मे जो दो घण्टे का समय मैंने व्यय किया है, उसे मैं इस जीवन में न भुला सकूँगा। इन स्त्रियों की अपमानजनक अवस्था देखकर मेरा सिर लज्जा से झुक गया।" यह कल्पना करना सरल है, कि यह स्त्रियाँ अपनी वास्तविक अवस्था को महात्माजी के सम्मुख कभी प्रकट न कर सकी होंगी। महात्माजी लिखते हैं—"......शब्दों

से नहीं, वल्कि इन स्त्रियों की कातर आँखों से मैंने इनकी करुण-कथा को समझने का प्रयत्न किया।

महात्माजी लिखते हैं—"मैं यह समझ नहीं सकता, कि मनुष्य किसी भी स्त्री की ओर पाप-वासना और काम-लिप्सा की दृष्टि से क्यो देखने लगता है?... ....यदि संसार मे कहीं एक भी स्त्री मनुष्यों की पाप-वासना की शिकार वन रही है, तो वह सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिये लज्जा का विषय है। भगवान् की सृष्टि के सर्वोच्च पदार्थ नारी-शरीर का इस प्रकार अपमान कर उसे नष्ट करने से यह कहीं अच्छा होगा, कि मनुष्य-जाति का ही लोप हो जाय। स्त्री और पुरुष मे-से, स्त्री मनुष्य की अपेक्षा अधिक पवित्र और पूज्य है। वह त्याग, ज्ञान और सहनशीलता और विनय की प्रतिमूर्ति है। यदि मनुष्य इसका अपमान करता है, तो वह स्वयं अपने नाश की तैयारी कर रहा है।"

स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के विषय मे महात्माजी के आश्रम में जो नियम लागू है, और जिनका प्रतिपादन महात्माजी मनुष्य-समाज के लिये करते हैं, यूरोपियन लोगों को अत्यन्त विचित्र जान पडते हैं। इन नियमों की तह में महात्माजी की उपरोक्त धारणा काम कर रही है। उनका विश्वास है कि पुरुष ही काम-वश हो, स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार करता है। कुछ लोगों की यह धारणा है, कि मनुष्य-समाज को नियमित शृङ्खलाओं मे रखने के लिये किसी सीमा तक वेश्या-वृत्ति को सहन करना ही पड़ेगा, और भारतवर्ष में प्राचीन समय से यह प्रथा चली भी आई है—इसे महात्माजी स्वीकार नहीं करते। महात्माजी कहते हैं—'अपने पूर्वजों के सद्गुणों को अनुकरण करने के लिये हम सदा तैयार हैं, परन्तु उनके दोषों का दोहराना हमारे लिये अभिमान का कारण नहीं हो सकता।"

गाँधीजी कहते हैं—'भारतवर्ष मे प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है, कि वह देश की सब स्त्रियो के सम्मान की अपनी सगी बहिन के समान रक्षा करे।.........स्वराज्य का अभिप्राय ही यह है, कि हम लोगों मे इतनी विशालता हो, कि हम भारत के प्रत्येक पुरुष को अपनी भाई-बहन समझ सकें।'

इसी प्रकार के और दूसरे सामाजिक अत्याचारों और कुरीतियों के भी वे कट्टर विरोधी हैं। बाल विवाह के नाम से उन्हें चिढ़ है। बाल-विवाह को देखकर तो उनका हृदय काँप उठता है। बाल-विवाह के पक्ष मे भारत की विशेष परिस्थिति तथा जलवायु की उष्णता की ओट लेकर जो युक्तियां दी जाती हैं—उन्हे वे स्वीकार नहीं करते।

वे लिखते हैं—"यह कहना कि भारत की उष्ण जलवायु के कारण इस देश के लड़के-लड़कियां अपेक्षाकृत शीघ्र युवा हो जाते हैं, निरा अन्ध-विश्वास और लचर दलील है। लड़के-लड़कियों के शरीर में यौवन के चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने का कारण जल-वायु नहीं, विकृत पारिवारिक परिस्थिति है। बचपन में सगाई हो जाना, सदा इसी विषय की चर्चा और परिहास सुनते रहने, या इस प्रकार के तामसिक और उत्तेजक भोजन करते रहने के कारण ही यौवन के चिन्ह असमय से फूलने लगते हैं, और कामुकता की मात्रा बढ़ जाती है।"

महात्माजी न केवल वेश्या-वृत्ति के विरुद्ध हैं, वरन् शराब, अफीम, चरस, गाँजा, तम्बाकू और चाय तक का निषेध करते हैं। उनका विश्वास है कि यह सब मादक वस्तुएँ भारत के तन-धन को चुरा कर, उसे निरन्तर दुख-दारिद्य के जाल में फैलाए हुए हैं।

इस दुख-दारिद्य का महात्माजी को गहरा अनुभव है। वे सदा अकाल-पीड़ित प्रान्तों में सेवा के लिये पहुँचते हैं। उनका कहना

है—"दुख-दारिद्रय और दीनता का जैसा भयङ्कर रूप भारत के गाँवों मे मौजूद है, उसको तुलना ससार के अन्य देशों में ढूँढने से भी नहीं मिलेगी।" महात्माजी पुरी का वर्णन करते हुए अपने एक वैयक्तिक अनुभव मे यों लिखते हैं—"मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट-पुलिस एक मन्दिर के चौक में ले गया। वहाँ सैकड़ों क्षुधा-पीड़ित नर-नारी पडे हुए थे। उनके जीवन-प्रदीप मानो बुझने से पहले अन्तिम वार टिमटिमा रहे थे। वे निराशा की सजीव-मूर्ति थे। दूर से भी उनके शरीर की नस नस और एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। उनके शरीर में माँस नाम को भी न था। उनकी खाल ढीली पड़कर लटक गई थी। उनकी आँखो की ज्योति विलीन हो चुकी थी। मृत्यु उनके दुखों का अन्त कर दे, इसके अतिरिक्त, उनके मन मे कोई भी इच्छा न थी। मुट्ठी-भर चावल जो उन्हे दिया जाता था, उसे ग्रहण कर, खाना तक उनके लिये असाध्य था। अपने इन भाई-बहनों के इस ढङ्ग से सूख-सूखकर प्राण देने से बढ़कर, रौद्र और भयानक दृश्य, मैंने अपनी आयु मे दूसरा नहीं देखा है। इन लोगों का जीवन एक निरन्तर-उपवास है, कभी-कभी वे हम लोगों के जीवन का उपहास करने-मात्र के लिये हमारे सम्मुख मुट्ठी-भर भात खाने लगते हैं।"

भारत की अवस्था का अध्ययन महात्माजी ने ख़ूब भली प्रकार किया है। प्लेग और हैजे की वीमारी फैलने पर वे ग्रामों और नगरों में जनता की सेवा और सहायता के लिये गए। वहाँ उन्होंने देखा—लोग निस्सहाय हो कीट-पतङ्गों की मौत मर रहे हैं। वे लिखते हैं—"भारत की जनता का दसवाँ भाग तो सदा-दी अकाल की पीड़ा में फँसा रहता है। शेष लोग आधा-पेट खाकर दिन काट रहे हैं। मध्यम श्रेणी के लोग भी जीवन की आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने में असमर्थ हैं। भारत के सभी भागों में

मैंने भ्रमण किया है, परन्तु कभी भाग्य से ही कोई पूर्णतया स्वस्थ मनुष्य मेरी दृष्टि में आया होगा।" भारत की इस रोग-शोक-पीड़ित स्थिति का चित्र हरदम उनके दिमाग में चक्कर लगाया करता है। इस कष्ट को दूर करने के लिये उनकी आत्मा सदा व्याकुलता से छटपटाती रहती है। वे कहते हैं—"हमारे देश के धन, बुद्धि और आचार का पूर्णतया नाश हो चुका है।"

अवनति के गहरे गढ़े में गिरते हुए देश को बचाने के लिये महात्माजी को विलक्षण उपाय सूझा है। वे कहते हैं—"इस समय भारतवासियों को पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह से सन्तानोत्पत्ति को एकदम बन्द कर देना चाहिए। देश की वर्तमान अवस्था मे सन्तान उत्पन्न कर, निस्सहाय, निर्बल, दास-सन्तान को जन्म देना, भावी संतति के प्रति घोर अन्याय करना है। जब तक भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र न बन जाय, जब तक हम भारत से भूख और महामारी को निकाल कर बाहर न कर दें, आनेवाली संतति के लिये सुशिक्षा का प्रबन्ध न कर लें, हमें सन्तान उत्पन्न करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं भली प्रकार जानता हूँ, आज इस देश में उत्पन्न होनेवाली संतान के पालन के लिये, सुविधा नहीं है। इसलिये जब कभी मैं कहीं भी सन्तानोत्पत्ति का समाचार सुनता हूँ, तो मुझे नए आए हुए बालक के दुर्भाग्य के लिये शोक होता है।" महात्माजी संतान-निरोध के कट्टर पक्षपाती होते हुए भी विषय-वासना को पूर्ण कर, कृत्रिम उपायों से संतान-निषेध के विरोधी हैं। उनकी सम्मति में प्रथम तो इस समय विवाह ही न होना चाहिए। विवाह हों, तो स्त्री-पुरुष को संयमपूर्वक रहना चाहिए। वे स्वयं अपनी इच्छा से, भारत की जन-संख्या को कम कर देने के पक्ष में हैं। वे कहते हैं—"यदि हम अपनी दासता के लिये उत्तराधिकारी उत्पन्न न करें, तो कोई विशेष हानि नहीं!"

संसार के इतिहास में भगवान् बुद्ध के पश्चात् मनुष्य के प्रति करुणा से इस प्रकार पूर्ण हृदय का दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। महात्मा गाँधी की सम्पूर्ण विचार-धारा और नीति का मूल उद्देश्य है, दुख-दारिद्र्य और दीनता का उपाय करना। यही उनकी राजनीति और धार्मिक मीमाँसा है। महात्माजी एक भारतीय कम्पनी की ओर से वकालत करने प्रिटोरिया गए थे। वहाँ अपने देशवासियों की दयनीय और अन्याय-पीड़ित अवस्था देखकर वे उसके उपाय मे लग गए और जीवन के बीस वर्ष उन्होंने इन लोगों के कष्ट और दुख दूर करने में ही व्यय कर दिए।

यदि हम महात्माजी के जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डालें, तो हमे जान पड़ेगा कि राजनैतिक क्षेत्र में उनके पैर रखने का कारण मनुष्य जाति के प्रति उनकी सहानुभूति ही है। उन्नीसवीं सदी के मध्य मे दक्षिण-अफ्रीका में जब अंग्रेज-औपनिवेशिकों ने बसना आरम्भ किया, तो उन्हे कृषि तथा दूसरे धन्धों के लिये मजदूरों की आवश्यकता अनुभव हुई। इन लोगों की गृद्ध-दृष्टि निर्धन भारत के सस्ते मजदूरों पर पड़ी। सैकड़ों ही दलालो ने भारत के अबोध किसानों को निश्चित वर्षों तक निश्चित मजदूरी पर अफ्रीका मे काम करने के लिये प्रतिज्ञा-पत्र लिखवा कर यहाँ भेजना आरम्भ कर दिया। दलाल-लोग अनजान किसानों को भारी आमदनी और सुखमय जीवन के मधुर स्वप्न दिखा-दिखाकर, कुली-दल में भरती करके वहाँ भेज देते। वहाँ पहुँचकर उन लोगों के प्रति दूसरे-दूसरे ही ढङ्ग का व्यवहार होता है। उनके गोरे मालिक उनसे बिल्कुल जर-खरीद गुलामों की भांति काम लेते। गोरे प्रभुओं को अपने काले दासो पर सब प्रकार का अधिकार प्राप्त था। काले दास किसी प्रकार के अन्याय या अत्याचार के विरुद्ध एक शब्द भी न कह सकते थे। इन उपनिवेशों का कानून कुछ इसी ढङ्ग का

था, कि गोरों का सब अत्याचार न्यायानुकूल होता और भारत-वासियों का अनुनयपूर्वक न्याय की प्रार्थना तक करना न्याय-विरुद्ध। क़ानून का अत्याचार तो जो-कुछ था, सो था ही, उसपर गोरे आतङ्कवादियों के दल ने भारतवासियों के जीवन को प्रायः असम्भव-सा कर दिया।

इसी अवस्था में गाँधीजी दक्षिण-अफ्रीका में पहुँचे। उन्होंने देखा, बृटिश साम्राज्य की छत्र-छाया में भारतवासियों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार हो रहा है। मनुष्यता के इस अपमान को सहन न कर सके। उन्होंने अंग्रेजों के दमन और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। यहीं से गाँधीजी के राजनैतिक जीवन का आरम्भ होता है।

सी० एफ० एण्ड्रूज महात्माजी के अंग्रेजी सरकार के प्रति विद्रोही हो जाने का कारण बताते हुए लिखते हैं—"गाँधीजी के अंग्रेजी शासन से बाग़ी हो जाने का कारण है, अंग्रेजों का ग़रीब भारत पर अत्याचार! भारत के क्षुधार्त और अकाल पीड़ित जनता के अस्थि-पिंजरावशिष्ट शरीरों को देखकर गाँधीजी का मस्तिष्क क्षुब्ध हो उठा है। वह इस अन्याय का विरोध किए बिना रह ही नहीं सकता।" एण्ड्रूज कहते हैं—"असहयोग-आन्दोलन को जारी कर देने के पश्चात् भी, गाँधीजी बृटिश सरकार के साथ एक शर्त पर सहयोग के लिये सदा तैयार रहते हैं। उनका कहना था, कि बृटिश सरकार जिस दिन भी भारत से दुख-दारिद्रय की बीमारी को निकालने का प्रयत्न करेगी, हम उसके सबसे पहले सहायक होंगे।"

सी० एफ० एड्रूज ने दक्षिण-अफ्रीका में महात्माजी के साथ रहकर उनके जीवन का गहरा अध्ययन किया है। वे लिखते हैं—"दुखियों के प्रति गाँधीजी की सहानुभूति केवल मौखिक ही नहीं

है। गाँधीजी ने जीवन का पर्याप्त भाग इन लोगों की अवस्था को जानने और समझने में व्यय किया है। गाँधीजी डर्बन में वहां के भारतीय धोबियो और कुँजड़ों के साथ रहते थे। वे उनकी जीवन-चर्या, उनकी आवश्यकताओं और शिकायतों का ख़ूब मनन करते थे।" एण्ड्रूज ने स्वयं भी महात्माजी के साथ रहकर इन लोगों के जीवन तथा गांधीजी की कार्य प्रणाली का अध्ययन किया है। वे कहते हैं—"महात्मा गाधीजी जितना ध्यान बड़े-से-बड़े महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रश्न पर देते हैं, उतना ही अपने देश के एक दुखी-दरिद्र किसान और मजदूर की अवस्था पर देते हैं। काम का कितना ही बोझ उनपर क्यों न आ पडे, अपने दुखी भाइयों की ओर से वह कभी ला-परवाह नहीं होते।"

जनता के स्वास्थ्य तथा हित की साधारण-से-साधारण बात को भी वे महत्व देते हैं। उन्होंने बनारस के मन्दिरों और वहाँ की गलियों की अवस्था सुधारने के लिये आन्दोलन किया। भारत मे महामारी फैलने पर सरकार की ओर से जो अपर्याप्त और अधूरा प्रबन्ध किया जाता है, उसके दोष वे कई बार जनता के सम्मुख रख चुके हैं। रेलवे में तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के साथ जो अनुचित व्यवहार किया जाता है, उसके विषय मे भी वे बहुत देर से आन्दोलन करते चले आ रहे है। महात्माजी को सफर बहुत अधिक करना पड़ता है और सफर मे वे लगातार काम भी करते रहते हैं। ऐसी अवस्था में उनका पहले दर्जे मे सफर करना बहुत युक्ति-संगत होता। परन्तु जनता के दुख और कष्ट में भाग लेने से गांधीजी कभी नहीं चूकते। भारत मे तीसरे दर्जे की गाड़ियों की अवस्था बहुत शोचनीय रहती है। उसमें कष्ट, मुसीबत और स्वास्थ्य को बिगाड़ने के सभी साधन मौजूद रहते हैं।

जनता के स्वास्थ्य के विषय मे वे बहुत चिन्तित रहते हैं।

उन्होंने सर्व-साधारण के लाभ के लिये एक पुस्तक 'स्वास्थ्य-रक्षा' नामक लिखी है। इस पुस्तक में उन्होंने स्वास्थ्य-रक्षा के साधनों पर प्रकाश डाला है और प्रायः सभी छोटी-मोटी रोजमर्रा घरों में होनेवाली बीमारियों के उपचार भी उन्होंने लिखे हैं। इसके अतिरिक्त नगर-ग्राम मे बीमारी फैलने पर उसके निवारण के उपायों का भी वर्णन उन्होंने किया है। स्वास्थ्य-रक्षा के साथ-ही स्वास्थ्य-उन्नति के सरल उपाय भी इसमे बतलाए गए हैं। पुस्तक की एक विशेषता यह है, कि उसमें प्रत्येक बात गाँधीजी ने अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर लिखी है। भारतीय जनता के प्रचलित भोजन के तरीक को व प्रकृति-विरुद्ध और अपव्यय समझते हैं। यूरोपियन ढङ्ग के तो वे सर्वथा ही विरुद्ध हैं। महात्माजी के विचार में मास, मछली और अण्डा सर्वथा हानिकारक तथा त्याज्य हैं। शेष पदार्थों को वे उनकी प्राकृतिक अवस्था में और बहुत थोड़े परिमाण में खाने के पक्ष में हैं। प्राकृतिक अवस्था से अभिप्राय है बिना रँधे और बिना मसाले के। गाँधीजी का विचार है, मसाला मिलाकर राँधने से भोजन विषाक्त, दुष्पाच्य और तामसिक हो जाता है। दलिया, महात्माजी के विचार में सबसे अच्छा भोजन है। सिद्धान्त रूप से तो वे दूध पीने के भी विरुद्ध हैं।

अपने जीवन के तमाम अनुभव और अध्ययन को महात्माजी ने भारत की आर्त-जनता के उपयोग के लिये उनके सम्मुख रख दिया है और स्वयं करुणा-पूर्ण हृदय से सेवा-धर्म अपनाए, वे घर-घर, अलख जगाते फिरते हैं। व्यापक सहानुभूति, सार्व-भौम आत्मीयता और सत्य उनके जीवन का सन्देश है।



यह प्रायः सुना जाता है, कि महात्मा गाँधीजी के इस आंदोलन मे भारतीय-कलाओं की उन्नति तथा पुनरुत्थान के लिये कोई अवसर नहीं है। उनके अनेक निकट मित्र भी उन्हे सर्वथा नीरस समझते हैं। आश्रम के कमरे में किसी भी प्रकार की सजावट महात्माजी को पसन्द नहीं है। कवीन्द्र के एक शिष्य के इसका कारण पूछने पर उन्होने उत्तर दिया था—"मैं अपनी सीधी चार दीवारों से ही सन्तुष्ट हूँ। मुझे तो छत की भी विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। जब मध्य-निशा में आकाश के छिटके हुए तारों पर मेरी दृष्टि पड़ती है, तो मैं उनके सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता हूँ। मनुष्य के हाथ की कला इससे अधिक आनन्द नहीं दे सकती। मैं कला का अनादर नहीं करता, मेरा आशय यह है, कि प्रकृति से तुलना करने पर मुझे मनुष्य-रचित कला में कृत्रिमता का भास होने लगता है।"

भारतीय संगीतज्ञ श्री दिलीपकुमार राय से कला के विषय में बातचीत करते समय भी गाँधीजी ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किए थे। उन्होने कहा था—"मै स्वीकार करता हूँ, तारों-भरी रात

की अपेक्षा अधिक शान्त, स्फूर्तिदायक और रोमाञ्चकारी दृश्य मनुष्य की कला उपस्थित नहीं कर सकती। भगवान की प्रचुर और रहस्यमयी कला के सम्मुख मनुष्य की कला मुझे निस्सार और तुच्छ जान पड़ती है।"

महात्माजी मानते हैं, कि मनुष्य-समाज की आध्यात्मिक और आचार-विषयक उन्नति के लिये कला की आवश्यकता जरूरी है। हाँ, स्वयं अपने लिये आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में वे किसी वाह्य सहायक-साधन की आवश्यकता नहीं समझते।

संगीत में महात्माजी की विशेष रुचि है। अनेक प्रकार के भारतीय बाजों का उनके आश्रम में उपयोग होता है। आश्रम मे दिन का कार्य संगीत की मधुर-ध्वनि से आरम्भ होकर अवसान भी आध्यात्मिक संगीत की तान में ही होता है। देहली यरवदा और वार्धा मे उपवास के दिनों में भगवान् कृष्ण तथा विष्णु की स्तुति का गान ही उनके लिये भोजन का काम करता था। रात को सोने से पहिले वे भक्ति-भाव के भजन अवश्य सुनते थे।

महात्माजी को संगीत से जो प्रेम है, उसका कारण केवल कला का ज्ञान अथवा रसास्वादन ही नहीं—वास्तव में महात्माजी संगीत को भक्ति और आत्म-चिन्तन का एक साधन समझते हैं। भारत के सभी वाद्य-यन्त्र—सितार, सारङ्गी, वीणा, तम्बूरा, इत्यादि—मिलकर भिन्न-भिन्न रागों के साथ आश्रम में बजते हैं। भारत मे यह राग अनेक सन्ततियों से मौखिक ही चले आ रहे हैं। भारतीय संगीत के सिद्धान्त यूरोपियन संगीत से सर्वथा भिन्न हैं। उनमें न वह माधुर्य्य है न वह प्रासाद ही! पुरानी चाल की कुछ तानों पर ही भारतीय संगीत का आधार है। भारत के प्राचीन संगीत में प्रायः चार-सौ के लगभग राग थे। इनमें-से अनेक समय के प्रभाव से नष्ट हो चुके हैं। यह सभी राग केवल २२ मात्राओं में गाए जाते

हैं। इसलिये वैचित्र्य और भेद की कमी के कारण यूरोपियन लोगों को उसमें कुछ रस नहीं अनुभव होता। इस भारतीय संगीत की कल्पना करना चाहे, तो आप एक पद को प्रायः आध घण्टे तक बिना किसी परिवर्तन के दोहराते रहिए।

इन रागों के विषय प्रायः धार्मिक ही होते हैं। अधिकांश में कृष्ण के प्रति अनुराग का वर्णन रहता है, या भारतीय योगियों की धार्मिक क्रियाओं का वृत्तान्त होता है। महात्मा गाँधी का संगीत-प्रेम वास्तव में उनके धार्मिक अनुराग का ही प्रमाण है। भारत में संगीत आदि कला मानी गई है। मन के भाव अपनी रचित कविता में रखकर आनन्द प्राप्त करता है, उससे भी अधिक आनन्द संगीत में उसको गाकर श्रावक को दिया जा सकता है। गान-विद्या साधारण विद्या नहीं है। इसके तान मे भयङ्कर शेर, मस्ताने हाथी, कराल सर्प तक मस्त हो जाते हैं। अच्छे उस्ताद से मुलाकात भर होनी चाहिए।

महात्मा गाँधी संगीत अध्यात्म विद्या का यानी एकाग्रता पैदा कर परमेश्वर में लय हो जानेवाली विद्या का मुख्य साधन समझते हैं।

श्री दिलीपकुमार राय से इस विषय में बातचीत करते समय महात्माजी ने कहा—"मैं संगीत की उपेक्षा भला किस प्रकार कर सकता हूँ? मुझे तो भारत का आध्यात्मिक अभ्युत्थान संगीत के बिना सम्भव ही नहीं जान पड़ता। मैं तो संगीत की थोड़ी-बहुत प्रारम्भिक शिक्षा प्रत्येक के लिये आवश्यक समझता हूँ। मैं तो जानता हूँ, हम सब लोग सम्मिलित हो, देश भर मे राष्ट्रीय गान गाया करें, और देश के बड़े-बड़े संगीताचार्य हमें सुर-ताल की शिक्षा देवे।"

भारतीय जीवन की संस्कृति की आधार-शिला धार्मिक विश्वास है। इस धार्मिक विश्वास को स्फूर्ति देने तथा उत्तेजित करने का एक

साधन सङ्गीत है। इसलिये महात्मा गाँधी सङ्गीत को इतना महत्व देते हैं। वे सङ्गीत को धार्मिक तथा राष्ट्रीय अनुभूति को जागरित करने का एक उपकरण समझते हैं। इसके अतिरिक्त कला की दृष्टि से जीवन में आनन्द का उद्रक करने के लिये सङ्गीत का कुछ भी मूल्य उनकी दृष्टि में नहीं है। वे स्वयं कहते हैं—"मुझे सङ्गीत क्या, अन्य सब कलाओं से भी प्रेम है, परन्तु मैं उन्हे इतना अधिक महत्व नहीं दे सकता। उदाहरणतया उस कला का मुझे कोई विशेष लाभ जीवन में नहीं जान पडता, जिससे आनन्द प्राप्त करने तथा उसे समझने के लिये भी हमें शिक्षा ग्रहण करनी पड़े।"

महात्माजी कहते हैं—"कला से जीवन का महत्व है। मैं तो यह कहने का साहस करता हूँ, कि जीवन मे वास्तविक पूर्णता प्राप्त करना ही कला है। यदि कला ने जीवन को सुमार्ग पर न डाला, तो वह कला ही क्या हुई?" महात्माजी कला का मूल्य केवल सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से जाँचते हैं। उनके विचार मे सत्य की खोज और निरूपण ही सबसे बड़ी कला है।

हानि-लाभ और भलाई-बुराई से परे सौंदर्य और कला का जो अपना एक अस्तित्व है—उदाहरणतया स्वयं प्राकृतिक दृश्य—उसे गाँधीजी कोई महत्व नहीं देते। एक स्थान पर वे लिखते हैं—"क्या प्राकृतिक दृश्यों के सौंदर्य में हमें सृष्टि-कर्ता की महिमा का आभास नहीं होता? यदि द्रष्टा के मन में सूर्य और तारों का प्रकाश भगवान की विद्यमानता को प्रकट न करता, तो क्या कभी वह इतना सुन्दर जान पड़ता? जब कभी मैं सूर्यास्त के दृश्य को अथवा चन्द्रमा के कोमल प्रकाश को देखता हूँ, मेरा सिर भगवान के चरणों में श्रद्धा से झुक जाता है। मैं सृष्टि-कर्ता की रचना में उसे हर स्थान पर देखता हूँ। यदि प्रकृति के इन मनोरम दृश्यों को हम भगवान की अनुमति के बिना देखेंगे, तो हम अपने कर्त्तव्य-पथ पर

दृढ़ न रह सकेंगे। मोक्ष के मार्ग पर चलना हमारे लिये सफल होगा।"

गाँधीजी आगे लिखते हैं—"संसार में वही सत्य और सुन्द कला के उदाहरण उत्पन्न कर सकता है, जिसका हृदय सुन्दर है शुद्ध अन्तःकरण-वाला मनुष्य सदा ही आदर्श कला का उत्पाद होता है।" वे लिखते हैं—"मसीह और मुहम्मद ने सत्य क पहचान लिया था। इसी से वे संसार के सम्मुख एक महान् सं को उपस्थित कर सके। अरबी-साहित्य में क़ुरान से बढ़कर दूसर उत्कृष्ट पुस्तक नहीं। सत्य की जिज्ञासा के कारण ही मसीह औ मुहम्मद के शब्दों मे इतना माधुर्य और प्रभाव हो सका, नहीं त उन्होंने वास्तव में इसके लिये प्रयत्न ही नहीं किया था।"

ऊपर भी कहा जा चुका है, गाँधीजी कला का अनुमोदन उस अंश तक करने को तैयार है, जिस अंश तक वह मनुष्य-समाज क प्रवृत्ति को आध्यात्मिकता की ओर ले जाय। कला को स्वयं कल के लिये, उसके अनेक आन्तरिक सौन्दर्य के लिये वे स्वीकार करने क तैयार नहीं। इस प्रकार की कला को वे निष्प्रयोजन और निस्सा समझते हैं। इस प्रकार वे साहित्य मे, उदाहरणात', महात्मा गाँ आस्कर वील्डे की रचनाओं को समझते हैं। ऐसे लेखको के प्रति जनता की श्रद्धा देखकर उन्हे खेद और दुःख होता है। गाँधीजी कहते हैं-"मैं स्वीकार करता हूँ, साहित्य के क्षेत्र मे मेरी गति नहीं है, और न मैं एक समालोचक के आसन के योग्य ही हूँ। परन्तु ऑस्कर वील्डे के विषय मे अपनी स्मृति प्रकट करना उचित सम झता हूँ; क्योंकि मैंने लण्डन मे अपनी आँखों से वील्डे के साहित्य के घातक-प्रभाव का प्रमाण देखा है। वील्डे की सफलता की कसौटी है, भावों को स्पष्ट और विषद्-रूप से चित्रित करना। इस

बात की उसे चिन्ता नहीं रहती कि इस भाव के चित्रण का प्रभाव जनता पर क्या पड़ेगा।"

परन्तु हम देखते हैं, अनेक अवसरों पर वास्तविक सत्य का प्रतिपादन ऐसे लेखक भी सफलता से कर गए हैं, जिनका जीवन गाँधीजी के सिद्धान्त के अनुसार, सम्पूर्णता के ठीक विपरीत जाता है। इसका उत्तर महात्माजी यों देते हैं—"सत्य और असत्य प्रायः एक-साथ भी पाए जाते हैं। ऐसी अवस्था में जिस समय लेखक में सत्य का उद्भास हो, उसी समय उसकी रचना वास्तविक कला के अन्तर्गत होगी, अन्य अवस्था मे नहीं। परन्तु पूर्ण और वास्तविक सत्य-कला को उसी लेखक की कृति में हो सकेगी, जिसका जीवन स्वयं पूर्ण हो।"

महात्मा गाँधी के विचार में टॉलसटॉय के इस विषय के सिद्धान्तों की झलक स्पष्ट दिखाई पढ़ती है। टॉलसटॉय ने अपनी पुस्तक......................(कला क्या है ?) में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। विचार एक-से होने पर भी विचारों की परिस्थिति-भेद के कारण, विचारों के कारणों में अन्तर है। टॉल्सटॉय के यह विचार केवल आचार-नीति दृष्टि से हैं, परन्तु गाँधीजी के इन विचारों का कारण दूसरा है। उन्हे राजनैतिक तथा सामाजिक उलझनों का झंझट इतना अधिक घेरे हुए है, कि उनका ध्यान अपने नियमित क्षेत्र से निकलकर, केवल कला के साम्राज्य में जा ही नहीं पाता। अपने देश की दारुण और करुण अवस्था देखते हुए, वे किसी अपेक्षाकृत अनावश्यक विषय की ओर ध्यान दे ही नहीं सकते। लेनिन की भाँति गाँधी भी ऐसे किसी भी कार्य को कोई महत्व देने के लिये तैयार नहीं, जिससे कुछ भी लाभ न हो। इन दोनों ही व्यक्तियों की अन्तरात्मा करुणा और क्रन्दन की पुकार से ऐसे भरी हुई हैं, कि जिन्हें संसार में कुछ और दीखता ही नहीं।

ऐसे किसी भी मनुष्य की, जिसका सम्बन्ध सर्व-साधारण के दुःख और क्रन्दन से हो, सहानुभूति किसी ऐसे कार्य से होगी—जिसका लाभ जनता को कुछ भी न हो और जो केवल सजावट-मात्र ही हो—सम्भव नहीं। गाँधीजी कहते हैं—"मैंने कभी किसी भूखे का पेट, संगीत की मधुर तान से भरते नहीं देखा। संसार के भूखे और क्षुधार्त्त केवल रोटी की रट लगाए हैं—संगीत और कला की चिन्ता, वे क्योंकर कर सकते हैं" कवीन्द्र टैगोर ने गाँधीजी की कला के प्रति इस उदासीनता और नीरस भाव का जिक्र करते हुए एक बार लिखा था.................."मुझे तो इस उग्र राजनैतिक आन्दोलन के समय भी नवीन धन्धो के आविष्कार के अतिरिक्त और कुछ करने को नहीं। वह मनुष्य ही क्या, जो निरा परिस्थितियों का ही खिलौना बन जाय!—और जिसका जीवन एक निष्प्रयोजन खिलवाड़ मात्र हो! मैं जब गाता हूँ, तो संसार उसकी तान पर झूमता है। और क्या भगवान ही स्वयं समय का अनन्त अपव्यय नही कर रहे? वे इस परिवर्तन की आँधी मे अनेक नक्षत्रों को इच्छा-मात्र से छिटका देते हैं। दृश्यमय जगत् की धारा में वे कागज की नाव पर अपनी कल्पनाओं का बोझ लादकर उसे नदी मे छोड़ देते हैं। जब मैं उन्हीं के समान अपनी खिलवाड़ की नौका पर कल्पना का सौदा लादकर उनकी भेंट करने जाता हूँ, तो वे मुस्करा कर रह जाते हैं। मैं उनका आँचल पकड़, उनके पीछे गिरता-पड़ता चलने का प्रयत्न करता हूँ—पर कहाँ? इस भीड़ में मेरे हाथ से उनका आँचल निकल जाता है। मैं इस भीड़ मे कुम्हला-सा जाता हूँ?..............अरे! यह चारों ओर कैसा कोलाहल है? यह तो एक संगीत है। तो क्या मेरी वीणा इस ताल पर नहीं बज सकती? मैं भी तो गायक हूँ। मैं भी इस संगीत मे सम्मिलित होऊँगा। परन्तु यदि यह भयंकर विस्फोट का शब्द है, तो मेरा

कराठ समाप्त समझिए। मैं कब से कानों को साधे एक सुर—एक तान की प्रतीक्षा में चौकस बैठा हूँ, तुम मुझे इस व्यापक संगीत से सहयोग करने को कहते हो! यह मुझे स्वीकृत नहीं। मुझे तुम्हारे इस विरोध से आशंका होती है।.........प्रातः उठकर पक्षी केवल दाने को ही नहीं चिल्लाया करता, वह अपने सुरीले कंठ से नव-दिवस का स्वागत भी करता है। अपने पंखों की अनवरत फड़फड़ा-हट से वह अनन्त आकाश का आलिङ्गन करता है। मेरा मनुष्यत्व मुझे पुकार रहा है, मेरी अन्तरात्मा को गाने दो!"

गाँधीजी ने अपने एक लेख 'सतर्क प्रहरी' में इसका उत्तर दिया है। इस लेख के एक-एक शब्द में आपको पीड़ितों के प्रति गहरी सहानुभूति और वेदना अनुभव होगी। गाँधीजी का यह उत्तर संसार-भर में व्याप्त आधुनिक नीरसता और भावशून्यता के दोषारोपण की सफ़ाई है। गाँधीजी लिखते हैं—'जब मैं अपने चारों ओर लोगों को क्षुधा की पीड़ा से मरता देख रहा हूँ, तो मैं उनके पेट भरने के प्रयत्न को छोड़कर दूसरी ओर किस प्रकार ध्यान दे सकता हूँ?

भूख से मरते हुए को भी भगवान् देखते हैं। यदि कवि का यह कर्तव्य है कि वह हमारा ध्यान पक्षियों के प्रातः-संगीत की ओर आकर्शित करे, तो किसी व्यक्ति को इन पक्षियों के भूख से तड़पने पर भी इनका ध्यान करना होगा। आज करोड़ों मनुष्य भूख से बिलबिला रहे हैं—क्या सङ्गीत और कला से इनकी तृप्ति हो सकेगी?"

महात्माजी के विचारों और जीवन में दरिद्रता और विषाद निरन्तर प्रतिध्वनित हो रहे हैं। इनके विरुद्ध संग्राम करने में उनके जीवन का एक-एक पल और उनकी सम्पूर्ण शक्ति व्यय हो रही है।

६

महात्मा गाँधी के सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन का कारण है, उनकी अपने दीन-हीन और क्षुधार्त देश की दशा को सुधारने की इच्छा। देश की इस अवनति का मुख्य कारण है, आर्थिक दशा। इसके साथ ही दूसरे सामाजिक और राजनैतिक कारण भी आ जुटे हैं। आर्थिक अवस्था के गिरने की वजह है, देश के समृद्ध घरेलू उद्योग-धन्धों का नाश किया जाना।

साधारणतः भारत मे जितनी रूई उत्पन्न होती है, वह भारत की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये पर्याप्त है। परन्तु बृटिश राज्य के आगमन से इस रूई को देश के काम में न लाकर भारत के बाहर भेज दिया जाता है। इस रूई का बड़ा भाग इङ्गलैण्ड और कुछ जापान को चला जाता है। भारत को यह रूई बेचकर प्रायः प्रति वर्ष साठ करोड़ रुपए का कपड़ा विदेशों से खरीदना पडता है। बाहर जानेवाली रूई का मूल्य इससे कई-गुना कम होता है। गाँधीजी कहते हैं—'स्वयं रूई उत्पन्न करके भी जिस देश को बाहर से ही कपड़ा खरीदना पड़े, या यों कहिए अपने कपड़े की बनवाई

सात समुद्र पार भेजनी पड़े, वह निर्धन क्यों न हो जायगा? उसका दिवाला क्यों न निकलेगा?"

भारत को जो धन का बहुत बड़ा परिणाम, बाहर जानेवाले कच्चे माल तथा बाहर से आनेवाले पक्के माल के मूल्य में अन्तर-स्वरूप, विदेश भेज देना पड़ता है—वही तो इस देश की अवनति और निर्धनता का मुख्य कारण है। भारत को कपड़े की बुनाई में इतना अधिक देने के लिये विवश करना, उसके साथ भयंकर अत्याचार नहीं, तो क्या है?

इस राष्ट्रीय लूट से भारत को बचाने का एक मात्र उपाय गाँधीजी ने सोचा है—वह है, भारत के पुराने घरेलू धन्धों का पुनरुत्थान। पुराने समय में जो चरखा देश का शरीर ढाँकता था, फिर उसी चरखे का आश्रय लिया जाय। गाँधीजी कहते हैं—'चरखे के प्रति भारत के झुकाव का कारण है, देश की भूख!
हमें उन करोड़ों भूख के आतङ्क से व्याकुल मनुष्यों को भुला नहीं देना चाहिए जो प्रायः निष्प्राण-से हो रहे हैं।"

गाँधीजी को भारत के इस घरेलू धन्धे के नाश में आर्थिक अवनति के अतिरिक्त नाश का एक और भी कीटाणु दिखाई पड़ रहा है। वह है, विदेश से आया हुआ, बना-बनाया कपड़ा पहनने से फैलनेवाली अकर्मण्यता। विदेशी शासन के आगमन से पूर्व, देश में लाखों स्त्री-पुरुष कृषि से बचे हुए समय में कातने और बुनने का काम किया करते थे। इससे जहाँ वे निठल्ले नहीं बैठने पाते थे, वहाँ अपनी कृषि की मामूली आमदनी में कुछ बढ़ती भी कर लिया करते थे। भारत के कृषक केवल भूमि की उपज पर निर्भर नहीं रह सकते। उन्हें अपनी आमदनी में किसी-न-किसी प्रकार कुछ बढ़ती करने की आवश्यकता है।

अदालत में अपना बयान देते समय गाँधीजी ने कहा था—

"आज से डेढ़-सौ वर्ष पूर्व हमारे परिवारों की स्त्रियाँ बहुत महीन सूत कातकर अपने पति की आमदनी में सहायता पहुँचाती थीं। इस सूत को बुनकर किसान अपनी रोजी कमा लेते थे। भारत के आर्थिक सङ्गठन का यह एक मुख्य अङ्ग था। हम लोग अपने खाली समय को लाभकारी और उचित ढङ्ग पर व्यतीत किया करते थे। आज हमारे देश की स्त्रियो के हाथों मे वह कौशल नहीं रहा। जनता को विवश हो, निठल्ले बैठना पड़ता है और स्वाभाविक ही इससे उनकी आर्थिक अवस्था बिगड़ती है।"

एक दूसरे अवसर पर इस आर्थिक अवनति का कारण बतलाते हुए उन्होने कहा था—'इस प्रकार सहस्रों जुलाहों को कपड़ा बुनने का काम न रहने के कारण नगरो मे आकर मेहतर का काम करना पड़ा। कुछ को अपनी स्त्रियों और बेटियों की इज्जत बेचकर निर्वाह करना पड़ा। पञ्जाब के आत्म-सम्मानी जुलाहो को और काम न मिला, तो रोटी के लिये वे सेना में भर्ती हो गए।"

गाँधीजी का विचार है, कि अङ्गरेज़ी शासन में भारत को सैनिक-व्यय से भी उतनी हानि नहीं हुई, जितनी कि घरेलू धन्धे के नाश से हुई है। वे लिखते हैं—"मैंने प्राय सारे देश मे भ्रमण किया है, और जहाँ कहीं भी मैं गया हूँ, लोगों को मैंने बेकार पाया है। अपना पेट भरने तथा शरीर ढाँकने तक के लिये उनके पास दाम नहीं हैं।"

गाँधीजी लिखते हैं—"भारत की वास्तविक दशा का अनुमान यदि आप करना चाहते हैं, तो गाँवों में जाइए। नगरों को देखकर देश की वास्तविक दशा का अनुमान नहीं हो सकता। नगर स्वयं कुछ भी उत्पन्न न कर, गाँवों के सिर पर पल रहे हैं। प्रायः दो-सौ वर्ष से विदेश-द्वारा जो भारत की लूट हो रही है, उसका कुछ भाग नगरों को भी मिल जाने से वे अपेक्षाकृत सम्पन्न दीख पड़ते हैं।

इस अपव्यय और रक्त-शोषण से बचने के लिये गाँधीजी हाथ से बनी वस्तुओं के व्यवहार का आदेश देते हैं। उनका कहना है—"विदेश में तैयार वस्तु ख़रीदने से केवल दो आने के लगभग मज़दूर के हाथ में आते हैं, और शेष सब पूँजीपति के हाथ चला जाता है। हाथ के बने हुए माल के ख़रीदने से विदेश में अथवा पूँजीपति के हाथ कुछ भी नहीं जाता।"

महात्माजी के आन्दोलन का प्रधान स्तम्भ है—विदेशी वस्त्र का बहिष्कार, और चरखे का पुनः प्रचार। वे कहते हैं—चरखे को छोड़ देने से भारत के आर्थिक शरीर का बायाँ फेफड़ा नष्ट हो गया है, और हम आर्थिक क्षय-रोग में दिन-दिन फँसते चले जा रहे हैं। चरखे का आश्रय लिए बिना हम इस व्याधि से मुक्ति नहीं पा सकते। यदि हम विदेशी वस्त्र का पूर्ण बहिष्कार कर, केवल घर का कता-बुना कपड़ा पहनने लगें, तो प्रति वर्ष साठ करोड़ रुपया विदेश मे न जाकर, भारत की क्षुधार्त जनता के हाथ में रह जाय, और इससे हम उन्नति कर, अपनी अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकेंगे। चरखे और खद्दर से ही भारत अपनी दासता को दूर कर, मुक्ति लाभ कर सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं!"

घरेलू उद्योग-धन्धों के पुनरुत्थान तथा चरखे-खद्दर के व्यवहार और विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के लिये गांधीजी ने एक प्रबल आन्दोलन आरम्भ किया है। उनके सभी अनुयायी केवल देश मे कता और बुना गया कपड़ा ही पहनते हैं। जो विदेशी कपड़ा पहले किसी-समय का ख़रीदा हुआ इन लोगों के पास है, उसे भी इन लोगों ने जला दिया है। यदि गांधीजी का बस चलता वे प्रत्येक भारतवासी के लिये कातना और बुनना एक आवश्यक कर्तव्य ठहरा देते। स्कूलों और कॉलेजों मे सब जगह चरखा-ही-चरखा नज़र आता।

महात्माजी का विचार है, इस प्रकार वे लाखों गज खद्दर अनायास ही उत्पन्न कर सकेंगे।

महात्माजी का विचार है—यदि विदेशी वस्त्र का पूर्ण बहिष्कार हो सके, तो देश में जितना भी खद्दर उत्पन्न हो, उसका खपत भारत मे आसानी से हो सकती है। उसके हिसाब से यदि देश में बीस लाख चरखे चल निकलें, तो भारत की आर्थिक दासता का अन्त हो जाय। राजनैतिक पराधीनता को दूर करने के लिये आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। गांधीजी कहते हैं—"इङ्गलैण्ड भारत को चाहे कितने ही सुधार क्यों न दे दे, परन्तु इससे भारत की वास्तविक स्वतंत्रता कभी प्राप्त नहीं हो सकती। भारत के लिये स्वतंत्रता-प्राप्ति का एक यही मार्ग है, और वह है, चरखे की सहायता से आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति!

जिस समय गाधीजी ने चरखे और हाथ के कते-बुने कपड़े का प्रचार आरम्भ किया, उस समय उसकी भीषण समालोचना हुई। मैशीनरी के इस युग में हाथ के बने माल की ओर लौटने की बात सोचकर, सभी को विस्मय होता था। इस आन्दोलन में रत्ती-भर भी सफलता मिलने की आशा किसी को न थी। इन सब शंकाओं के लिये गाधीजी का एक उत्तर है—"कुछ लोग कहते हैं, मैशीनरी के इस युग मे चरखे का पुनः व्यवहार में लाने का प्रयत्न करना मूर्खता है। सिलाई-मशीन, टाइपराइटर और कताई की मिलों के साथ चरखे का क्या सादृश्य! मैं उनसे पूछता हूँ, क्या सिलाई की मैशीन आ जाने से सुई का आस्तित्व मिट गया? क्या टाइपराइटर आ जाने से हाथ ने लिखना बन्द कर दिया? नहीं, तो फिर कताई की कल के साथ चरखे का निर्वाह क्योंकर नहीं हो सकता? संसार भर मे बड़े-बड़े होटलों के खुल जाने से क्या लोग घर में रोटी पकाना छोड़ देंगे? सम्भव है, एक दिन सिलाई की मैशीन

और टाइपराइटर संसार में न रहें—परन्तु सुई और कलम को दुनिया से कोई नहीं मिटा सकता।"

इसके अतिरिक्त गाँधीजी कहते हैं—"भारत को मैशीनरी लगाकर संसार के देशों का मुकाबला करने मे भी तो कितना अधिक समय लगेगा? यह किसान-देश एक दिन में तो उद्योग-धन्धे में उन्नति कर नहीं सकता? तो फिर विदेशी वस्त्र के कारण आई हुई आर्थिक पराधीनता से छुटकारा क्योंकर मिल सकेगा?

इन सीधे आर्थिक कारणों के अतिरिक्त और दूसरे कारणों से भी गाँधीजी भारत में घरेलू उद्योग-धन्धे की उन्नति किया चाहते हैं। वे कहते हैं—"यदि हम केवल मैशीन का बना वस्त्र पहनने लगेंगे तो मैशीन के कपड़े की कीमत बढ़ जायगी, और निर्धन जनता के लिये वह कपड़ा खरीदना कठिन हो जायगा। प्रथम तो विदेशी माल के मुकाबले में मैशीनरी भारत में लाने और लगाने में न जाने कितने वर्ष लगेंगे, और फिर वह मैशीन भी इन साठ करोड़ रुपयों को भारत की जनता में न बाँटकर कुछ गिने-चुने पूँजी-पतियों के हाथ मे ही सौंप देगी, इससे शान्ति की अपेक्षा अशान्ति ही बढ़ेगी।..........हाथ के बुने-कते कपड़े से न-केवल कपड़े की पैदावार बहुत शीघ्र बढ़ाई जा सकती है, बल्कि मैशीन के माल को सस्ता भी किया जा सकता है।"

गाँधीजी भारतीय कल-कारखानों की भी बढ़ती के विरुद्ध हैं। उन्हें इसमें सामाजिक अशान्ति के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। वे भारत में उत्पत्ति के साधनों से विहीन मजदूर-श्रेणी की बढ़ती को नहीं चाहते। वे लिखते हैं—"बम्बई की मिलों में काम करनेवाले मजदूरों की अवस्था बिल्कुल दासों के समान है। स्त्री-मजदूरों की दशा देखकर तो हृदय फट जाता है। लोगों को बुरा जान पड़ेगा, परन्तु इन लोगों की अवस्था देखकर तो यही सोचता हूँ, अच्छा

होना, ये मिलें ही न होतीं; और हम अधिक रुपया मानचेस्टर भेज- कर कपड़ा मँगवा लेते। मानचेस्टर का कपड़ा लेकर तो हमें केवल आर्थिक हानि ही उठानी पड़ती, परन्तु घर में ही मानचेस्टर बनाकर हम अपने आपको भी गँवा रहे हैं। यह अवस्था देखते हुए भारत मे कल-कारखानो की उन्नति से प्रसन्न होने का मुझे तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता।"

महात्माजी से यह पूछने पर कि भारत में बनी हुई मिलों को भी क्या वे बन्द कर देना पसन्द करेंगे?—उन्होंने उत्तर दिया था—जो कुछ बन चुका है, उसे तो दूर करना कठिन है। हम मिल मालिकों को इसके लिये दोष भी नहीं दे सकते। उनसे मिलों को बन्द करने के लिये कहना दुराशा है। हाँ, हम उनसे मिलों की संख्या न बढ़ाने का अनुरोध कर सकते हैं।"

जो लोग महात्माजी के चरखे के कार्य-क्रम मे विश्वास नहीं रखते, उनके लिये महात्माजी का एक उत्तर है। वे कहते हैं— "जिन लोगों को चरखे की सफलता मे सन्देह है, वे ग्रामों में जाकर निर्धन किसानों की कुटिया में देखें, चरखे ने उनके जीवन के आनन्द को किसी सीमा तक बढ़ाय है या नहीं।"

घरेलू धन्धे के प्रति महात्माजी की श्रद्धा का एक और भी कारण है। उनका विचार है, जब तक भारत के लाखों-करोड़ों व्यक्ति निठल्ले बैठने के लिये विवश हैं, उनकी दृष्टि में राजनैतिक स्वतंत्रता का कुछ भी मूल्य नहीं।.........भारत की प्रायः अस्सी-फीसदी प्रजा को वर्ष मे छः मास निठल्ले बैठकर बिताने पड़ते हैं। यदि भारत के पुराने घरेलू धन्धे को पुनः जागरित किया जाय, तो इन लोगों को काम मिलने की सम्भावना हो सकती है। जब तक हम भारत की दरिद्र प्रजा के लिये काम की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे—उनकी रोटी का प्रबन्ध हमसे नहीं हो सकेगा।

महात्माजी लिखते हैं—"मैने प्रायः अपने भ्रमण में यह अनुभव किया है, कि हमारे देश की जनता मे अशिक्षा और दारिद्र्य के कारण आलस्य और निटल्लापन बढ़ता जाता है। लोगों की प्रवृत्ति मेहनत से भागने की ओर हो रही है। सदा आधे पेट भूख की खुमारी में पड़े रहने से उन्हें परिश्रम के प्रति एक प्रकार की घृणा हो गई है। उठकर कुछ करने की अपेक्षा वे बैठे-बैठे मृत्यु का ग्रास बन जाना स्वीकार करेंगे। यह सुस्ती का रोग मद्य-पान के अभ्यास से भी बुरा है। मद्य से काम करने की इच्छा का सर्वथा ह्रास नहीं हो जाता, परन्तु वे अर्द्ध-मृत जन्तु, किसी भी काम को करने के लिये तैयार नहीं हैं। वे किसी प्रकार भी पशु से भिन्न नहीं। इन लोगों की रुचि को काम की ओर लगाने के लिए—इन्हें मनुष्यता की ओर आकर्शित करने के लिये, कताई ही एक सरल और लाभदायक उपाय है।"

१०

चरखे के राजनैतिक और आर्थिक महत्व के अतिरिक्त गाँधीजी इसके द्वारा श्रम के प्रति जनता के हृदय में आदर और सम्मान का भाव उत्पन्न कराना चाहते हैं। कताई और बुनाई को महात्माजी भारत के दीन जन-समुदाय से सम्बन्ध बनाए रखने का भी एक साधन समझते हैं। चरखे और कताई-द्वारा सम्पन्न व्यक्तियों को निर्धनों के प्रति निरन्तर होनेवाले अत्याचार का भी कुछ उद्भास होता रहता है।

भारत की स्त्रियाँ विलायती कपड़ो को पहनकर जो अकर्मण्यता में समय व्यतीत करती हैं, उनके लिए भी चरखा समय के सदुपयोग का एक साधन महात्माजी की सम्मति मे है। महात्माजी ने वेश्याओं को सम्मति दी है, कि वे अपने अपमान जनक जीवन को छोड़कर यदि दो घण्टा रोज़ चरखा कातना शुरू कर दें, तो उनका जीवननिर्वाह सहज ही हो सकता है। भारत के औद्योगिक जीवन के पुनरुत्थान का उपाय महात्माजी को चरखे और खद्दर मे ही देख पड़ता है। उनका विचार है, अभी लोगो की प्रकृति इस एक वस्तु की ओर हो जाने से और एक ही ढंग, अर्थात् खद्दर की

कारणों से ही गाँधीजी खद्दर में आध्यात्मिक उन्नति के कारण देख पाते हैं। एक अंग्रेज-मित्र से बात करते समय महात्माजी ने कहा था—"यदि मैं अपने जीवन मे एक बार भारत में घर-घर चरखा पहुँचा सकूँ, तो अपने जीवन को सफल समझूँगा। यदि इस जीवन मे मैं इतना कर सकूँ, तो शेष कार्य को दूसरे जन्म के लिये रहने दूँगा।"

जेल जाने पर भी चरखे का ध्यान गाँधीजी को उसी तरह बना रहा। जेल से बम्बई की जनता के नाम आपने जो सन्देश भेजा था, उसमे लिखा था—"मैं नहीं चाहता, बम्बई-निवासी मेरी गिरफ्तारी पर किसी प्रकार का शोक करें। यदि बम्बई की जनता के हृदय में देश के प्रति दर्द है, तो प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपने समय का कुछ भाग चरखा कातने में लगाना चाहिए।"

श्रीमती कस्तूरीबाई ने भी गाँधीजी का सन्देश जनता को देते हुए कहा था—"गिरफ्तारी से पूर्व महात्माजी ने खद्दर और चरखे का प्रचार बढ़ाने के लिये आप लोगों से निवेदन किया है।" अपने कार्य-क्रम के सब अंगों मे अधिक-से-अधिक महत्व महात्माजी चरखे को देते हैं। वे समझते हैं—चरखे की सफलता से भारत के आर्थिक और राजनैतिक सभी बन्धन दूर हो जायँगे। जेल से गाँधीजी के जितने भी पत्र आते थे, उन सब मे चरखे और खद्दर की ओर ध्यान देने की ताकीद हमेशा रहती है।

महात्माजी ने इस धारणा के कारण, कि भारत की दरिद्रता और पराभव का कारण विदेशी वस्त्र का व्यवहार है और देश से चरखे को निकालने का कारण भी विदेशी वस्त्र ही है, विदेशी वस्त्र का खरीदना अथवा पहनना पाप करार दे दिया है। गाँधीजी कहते हैं—"यदि हम अमेरिका से मँगवाकर गेहूँ खायँ और अपने गाँव के किसान को बेकार बैठकर मरने दें, तो क्या यह हमारा अन्याय

नहीं है ? इसी प्रकार रीजेण्ड स्ट्रीट से बढ़िया माल मंगवाकर अपने पड़ासी जुलाहे की रोजी छीन लेना भी पाप है। बाहर से सूत का एक टुकड़ा मँगवाना एक दीन भारतवासी की रोटी में-से एक ग्रास काट लेने के समान है।"

महात्माजी कारखानों में बने हुए माल को एक और वजह से भी निषिद्ध समझते हैं। उनका विश्वास है, कि कारखानों में गरीब मजदूरों को अपनी मिहनत के लिये पूरी मजदूरी नहीं दी जाती। इसलिये इन कारखानों की पैदावार को व्यवहार में लाकर इनकी सहायता करना पाप है। गाँधीजी के सिद्धान्त अनुसार किसी भी प्रकार के अन्याय या धोखे में भाग लेना अनुचित है। गाँधीजी के अपने विचार के अनुसार यदि मनुष्य इस सिद्धान्त का ही पालन करे, तो भी उसे विदेशो वस्त्र न खरीदना चाहिए। क्योंकि विदेश से आया हुआ माल विदेश के कारखानों के मजदूरों की मेहनत का उनसे छीना हुआ भाग है। इस प्रकार अन्याय और अत्याचार से प्राप्त किए गए माल को न केवल व्यवहार में लाना महात्माजी बुरा समझते हैं, बल्कि वे इसे जला देना ही उचित समझते हैं। इस प्रकार इन वस्त्रों को जला देने से जनता के हृदय में अत्याचार के प्रति स्वयं घृणा उत्पन्न हो जायगी। वे लिखते हैं—"यदि एक बार हमारी समझ में यह आ जाय, कि विदेशी वस्त्र से भारत को अपरिमित हानि पहुँची है और हमारे देश के जुलाहों के नाश का कारण यही वस्त्र हैं, तो फिर क्या अपने भाइयों के ख़ून से भरे हुए इन वस्त्रों को जला डालना ही हम उचित नहीं समझेंगे ?"

गाँधीजी का विश्वास है, विदेशी वस्त्र के जला दिए जाने से खद्दर की खपत के लिये बाजार बनेगा। जिस समय महात्माजी ने विदेशी वस्त्र के जलाने का आन्दोलन आरम्भ किया, उस समय उनके अनेक प्रभावशाली मित्रों और सहयोगियों ने उनका विरोध

एक आदर्श औद्योगिक देश बना देना चाहा। गाँधीजी की नीति इसके ठीक विपरीत है। वह भारत को कृत्रिम उपायों से औद्योगिक पूर्णता पर नहीं पहुँचा देना चाहते। वे उसे खींचकर घरेलू उद्योग-धन्धो के पिछले, मध्य-काल मे ले जाना चाहते हैं। एक दफा विचार कर देखने से ऐसा जान पड़ता है, कि लेनिन की अपेक्षा गाँधीजी मार्क्स के अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्तों को अधिक गहराई तक समझे हुए हैं। दोनों व्यक्तियों का उद्देश्य एक ही है, वे पूँजीपति द्वारा मजदूर के परिश्रम का निवाला हड़प जाना सहन नहीं कर सकते। लेनिन मजदूर को खींचकर वहाँ ले जाता है, जहा मजदूर पूँजीपति को मिटा देता है। गाधीजी मजदूर को खींचकर पीछे उस स्थान पर लौटा ले जाते हैं, जहा पूँजीपति था ही नहीं। मजदूर को पूँजीपति के साथ झगड़ने और रक्त-पात करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इस तुलना से गाधीजी लेनिन की अपेक्षा अधिक गहरे राजनीतिज्ञ जान पड़ते हैं।

पश्चिमीय पूँजीवाद के दृष्टि-कोण से देखकर हम गाधीजी के आन्दोलन को ठीक ढङ्ग से न समझ सकेंगे। अपने देश की अवस्था को सुधारने के लिये गाँधीजी भारत मे कल कारखाने की उन्नति पर निर्भर रह ही नहीं सकते। अभी अनेक वर्ष तक औद्योगिक क्षेत्र में भारत का महत्व कुछ भी न हो सकेगा। कुछ विदेशी मैशीनरी के अतिरिक्त देश मे इस समय है ही क्या ? विदेशी व्यापार का सामना करने के लिये पुराने घरेलू उद्योग-धन्धे का आश्रय लेने के अतिरिक्त गाँधीजी के पास कोई दूसरा साधन है ही नहीं। इसलिये उन्होंने कृषि-प्रधान भारत की परिस्थिति के अनुरूप चरखे के रूप में घरेलू उद्योग-धन्धे का ही आश्रय लिया। लेनिन ने रूस में क्रान्ति उपस्थित करने के लिये, जिस मार्ग का अवलम्बन किया, वह देश की आर्थिक परिस्थिति के प्रतिकूल था। उस मार्ग

पर चलने के लिये रूस को बहुत आर्थिक कठिनता अनुभव हुई। दूसरी ओर गाधीजी ने जिस मार्ग का आश्रय लिया है, वह भारत की परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल है। कृषि-प्रधान भारत बिना किसी उथल-पुथल के किये घरेलू उद्योग-धन्धे को पुनः ग्रहण कर सकता है।

इस दृष्टि-कोण से गाधीजी की मैशीनरी के बहिष्कार की नीति को देखने पर हमें उसकी सार्थकता समझ मे आ सकेगी। यद्यपि गांधीजी मैशोनरी का विरोध प्रधानतया आचार और आध्यात्मिकता के आधार पर कर रहे हैं, परन्तु उसको तह मे आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र का गम्भीर हित भी छिपा हुआ है। भारत की जैसी आर्थिक परिस्थिति आज दिन है, इसमे यदि वह सहसा औद्योगिक उन्नति करने का प्रयत्न करेगा, तो लाभ क स्थान मे हानि की सम्भावना ही उसमें अधिक होगी।

आस्ट्रिया के साम्यवादी लेखक मि० ब्रून्थाल ने अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी और भारतीय राज्य-क्रान्ति' में महात्माजी के इस मैशीन-विरोध पर नवीन दृष्टि-कोण से प्रकाश डाला है। उन्होंने अंग्रेज मजदूर-लेखक वेडलुड और महात्माजी के विचारों में अद्भुत साम्य दिखाया है। लुड के विचारों के प्रभाव से लॉर्ड बाइरन-जैसे प्रतिशाली व्यक्तियों की सहानुभूति, आन्दालन के साथ होते हुए भी नाटिंघम में बहुत-सा रक्त-पात और केवल कुछ हत्याएँ होकर ही रह गईं, इसके अतिरिक्त उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। परन्तु गाधीजी को अपने अहिंसात्मक मैशीनरी के विरोध से भारत की आर्थिक और सामाजिक अवस्था में अनेक परिवर्तन उपस्थित कर देने मे सफलता प्राप्त हुई।

———

११

गाँधीजी न-केवल कपडे की मिलों के ही विरोधी हैं, बल्कि वे साधारणतः मैशीनरी के पक्ष मे हैं ही नहीं। यूरोप के लोगो को यह विचार प्रायः बेढब-से जान पड़ेंगे। परन्तु गाँधीजी के यह विचार भारत की परिस्थिति-विशेष का ही परिणाम हैं। गाँधीजी के इन विचारो के विरोधी केवल यूरोप में ही नहीं, बल्कि उनके अपने देश मे भी पर्याप्त संख्या मे हैं। मि० शंकरन् नायर ने गाँधीजी के विचारों की समालोचना करते हुए लिखा है—"गाँधीजी भारत मे औद्योगिक उन्नति की आवश्यकता को समझते ही नहीं।" नायर के विचार मे भारत को न-केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही औद्योगिक उन्नति की जरूरत है, बल्कि इङ्गलैण्ड का सामना करने तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये भी उसे अपने उद्योग-धन्धे को बढ़ाना जरूरी है। नायर लिखते हैं—"गाँधीजी ने मैशीनरी का विरोध करने में शक्ति का जितना अप-व्यय किया है, उससे आधी भी शक्ति यदि उन्होने भारत के मजदूरों की अवस्था सुधारने में लगाई होती, तो वे उन अनेक कारणो को दूर कर सकते थे, जिनके कारण वे मैशीनरी का विरोध कर रहे

हैं। गाँधीजी भावुकता के आवेश में आकर देश में चरखे का प्रचार कर रहे हैं। हम यह नहीं कहते, कि चरखे का कुछ मूल्य है ही नहीं, परन्तु मैशीन की पैदावार के मुक़ाबले मे चरखे की स्थिति क्या हो सकती है ?"

यदि हम मि० ब्रून्थाल द्वारा गाँधीजी के सिद्धान्तों की विवेचना का अध्ययन करे, तो हमें मि० नायर की इस युक्ति की निस्सारता अत्यन्त स्पष्ट दिखाई पड़ेगी। मि० ब्रून्थाल का विचार है, महात्मा गाधीजी की विचार-धारा को समझने के लिये हमें भारत की आधुनिक सामाजिक स्थिति के साथ यूरोप मे साम्यवाद के आरम्भिक काल की स्थिति का मिलान करना पड़ेगा। यूरोप महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को दकियानूसी और उन्नति का अवरोधक समझता है। परन्पु भारत की परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए विचारकर देखा जाय, तो महात्मा गाधी-द्वारा निर्दिष्ट, घरेलू उद्योग-धन्धे के पुनरुत्थान का मार्ग भारत के लिये साम्यवाद तक पहुँचने के लिये सब से सरल और सीधा उपाय है।

पूँजीवाद को लेकर उद्योग-धन्धे की उन्नति कर, जिस अवस्था पर यूरोप पहुँच चुका है, वहां से देखने से तो गांधीजी के सिद्धान्त अवश्य ही साम्यवाद के प्रतिकूल जान पड़ेंगे। परन्तु भारत जिस स्थान पर इस समय तक पहुँचा है, उस जगह से गाधीजी का मार्ग उसे बिल्कुल सीधा साम्यवादी क्रान्ति तक पहुँचा देगा।

गाधीजी-द्वारा मैशीन के विरोध को भली प्रकार समझने के लिये, मि० ब्रून्थाल-द्वारा गांधीजी के सिद्धातों की विवेचना बहुत सहायक होगी। ब्रून्थाल का विचार है, गाधीजी की मैशीन के प्रति घृणा का कारण है, भारत में अंग्रेज़ों की व्यापारिक नीति। अंग्रेजों ने भारत के घरेलू उद्योग-धन्धे को तो मिटा दिया, परन्तु यूरोप के समान वहा औद्योगिक संगठन और कल-कारखानों का प्रचार नहीं

किया। भारत को केवल कच्चेमाल का स्रोत बनाने के लिये, उसे केवल कृषि पर ही छोड़ दिया गया। जो किसान खेती पर आश्रित रहकर भी वर्ष में आधा समय घर बैठे चरखा चलाकर अथवा कुछ और छोटा-मोटा धन्धा करके अपना निर्वाह चैन से कर लेता था, भूखा मरने लगा। उसके उद्योग-धन्धे का स्थान इङ्गलैण्ड के कल-कारखानो मे बने माल ने ले लिया। ऐसी अवस्था मे किसान या मज़दूर के मन में उसके मुख का ग्रास छीननेवाली मैशीन के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होना—सर्वथा स्वाभाविक है। यूरोप मे भी तो मैशीन के विरोध की यह लहर आई थी। वेडलुड के अनुयायियों ने मैशीनों के प्रति भयङ्कर आन्दोलन आरम्भ किया था। यूरोप मे यह आन्दोलन सफल न हो सका। इसका कारण यह है, कि वहाँ घरेलू धन्धे के मिटने से मजदूरों मे जो वेकारी उत्पन्न हुई थी, उसे कल-कारखानो की बढ़ती ने खपा लिया। भारत में जो वेकारी घरेलू उद्योग-धन्धे के नाश से हुई, उसका तो कोई उपाय अंग्रेज-व्यापार-नीति ने किया ही नहीं, अतः मैशीन के प्रति यहा घृणा का बढ़ना स्वाभिक ही था। महात्माजी की मैशीन के प्रति घृणा और पूँजी तथा पूंजीपति के प्रति विरोध का कारण भारत की सर्व-साधारण जनता की यह व्याकुलता ही है। महात्माजी के अपने लेख भी इस बात की पुष्टि करते हैं।

दूसरा कारण—जिसका प्रभाव महात्माजी पर मैशीनरी के विरोध मे पड़ा है, उनका १६०८ में इङ्गलैण्ड होना है। १६०८ मे इङ्गलैण्ड लायड जार्ज के नेतृत्व में उदार तथा मजदूर-दल का आन्दोलन पूंजीवाद के विरुद्ध भयंकर रूप में चल रहा था। उस समय इङ्गलैण्ड में पूंजीवाद द्वारा मजदूरो पर हानेवाले अत्याचार का निदर्शन अत्यन्त उत्कट रूप में किया जा रहा था। महात्माजी पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। भारत में लौटकर औद्योगिक

केन्द्रों में महात्माजी ने मिलों के मजदूरों की जो अवस्था देखी, वह और भी हृदय-द्रावक थी। इन मिलों में केवल पुरुषों से ही नहीं, बल्कि स्त्रियों और बच्चों से भी निर्दयतापूर्वक काम लिया जाता था। भारत की मिलों की अवस्था देखकर गांधीजी को विश्वास हो गया कि भारत का कल्याण मैशीनरी से हो ही नहीं सकता। आज से बाईस वर्ष पहले जब गांधीजी इंगलैण्ड मे थे, उस समय वहा मज़दूरों की अवस्था वास्तव में ही शोचनीय थी, और भारत का तो कहना ही क्या ?

गाधीजी जहां कहीं भी गए, उन्होंने मिलो में मज़दूरों की दुरवस्था ही देखी। इस व्यक्तिगत कटु अनुभव ने गाधीजी को वेडलुड को भाति मैशीनरी का कट्टर विरोधी बना दिया।

महात्माजी के मैशीनरी के प्रति विरोध का कारण हम टागोर के शिष्य 'राम' के साथ उनके वार्तालाप से भली प्रकार जान सकते हैं। राम ने गाधीजा से पूछा—"आप मैशीनरी-मात्र के ही विरुद्ध हैं ?" इसके उत्तर मे गांधीजी ने कहा—"भला यह कैसे हो सकता है ? मेरा अपना शरीर भी तो एक अव्यक्त कोमल और सूक्ष्म मैशीन ही है। चरखा भी एक मैशीन ही है। मुझे स्वयं मैशीनरी के प्रति कोई आपत्ति नहीं। समय और श्रम को बचाने का जो विचार मैशीनरी के साथ लगा है, इसी से मुझे आशङ्का होती है। समय और श्रम को बचाने का परिणाम होता है, अनेक के स्थान में एक आदमी का काम कर सकना। इससे अनेक मनुष्य बेकार ही भूख के मारे जहाँ-तहाँ फिरने लगते हैं। मुझे बहुत-से आदमियों का बेकार फिरना पसन्द नहीं। मैं यह नहीं चाहता कि बहुत-से आदमियों के मुख का ग्रास छीनकर, कुछ विलास करें। मैं देखता हूँ—मैशीनरी के प्रभाव से कुछ आदमी लाखों की मेहनत को निगल जाते हैं। यह मुझे सह्य नहीं। इसी से मैशीनरी का मैं विरोध

करता हूँ। यदि यह अवस्था दूर हो सके, मैशीन मनुष्य को खाने की जगह उसकी सहायता करने लगे, तो मैं उसके पक्ष में हूँ। मैं समाज में ऐसी अवस्था लाना चाहता हूँ, जिसमें रुपए के लिये प्रतिस्पर्द्धा न रहे, प्रत्येक मजदूर को आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त वेतन मिल सके। यदि ऐसा हो सके, तो मैशीनरी मज़दूर और समाज दोनो के लिये कल्याणकारी होगा।"

मैशीनरी के विरोधी गांधीजी के इन विचारों का कार्लमार्क्स के विचारों के साथ सादृश्य देखकर विस्मय होता है। मार्क्स ने पूँजीवाद के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है—"स्वाभाविक तौर से मैशीन में कम-से-कम समय लगना चाहिए। परन्तु पूँजी-पति मैशीन का व्यवहार इस प्रकार करता है, कि मजदूर का और भी अधिक समय काम करना पड़े। मैशीन से काम लेने पर काम में कम श्रम पड़ना चाहिए, परन्तु मालिक इस ढंग से काम लेना है कि मज़दूर पर काम का बोझ कई गुना बढ़ जाता है। मैशीन प्रकृति के ऊपर मनुष्य की विजय है, परन्तु मैशीन के मालिक उसमे मज़दूर की मेहनत काटकर अपना धन बढ़ाने का ही प्रयत्न करते हैं।"

जैसे हम ऊपर कह आए हैं, गांधीजी के मैशीन के विरोध का कारण ठीक वही है, जो मार्क्स बताते हैं। पूँजीपति लोग मैशीनरी की सहायता से दूसरो के श्रम से लाभ उठा, स्वयं चैन करते हैं, और पूँजी-हीन मज़दूर लोगों को संकट में रख, उन्हें अपने हाथ का दास बनाए रखते हैं।

महात्माजी मैशीनरी के प्रति अपने अभिशाप में यूरोप के कई आविष्कारों को सम्मिलित नहीं करते। उदाहरणतः कपड़ा सीने की मैशीन। उनका विचार है, कपड़ा सीने की मैशीन के आविष्कार का उद्देश्य केवल जन-समाज को सुविधा पहुँचाना है। या यों

समझिए, इस मैशीन को गाँधीजी घरेलू धन्धे का साधन समझते हैं, जिससे आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने मे सहायता मिल सकती है। इसके अतिरिक्त सब मैशीनो को गाँधीजी देश के लिये हानिकर समझ, उन्हे देश से निकाल बाहर कर देना चाहते हैं। वे विदेश से मैशीन द्वारा तैयार सामान का भारत में आना भी अनिवार्य नहीं समझते। उनका कहना है, सहस्रों वर्ष तक भारत सामान के बिना रह सकता है, तो अब भी रह लेगा। वे लिखते हैं—"यदि हम मैशीन के बिना पिन नहीं बना सकते, तो पिन के ही बिना गुजारा कर लेंगे। सुन्दर सुरुचिपूर्ण शीशे के सामान के बिना भी हमारा निर्वाह हो सकेगा। हाथ से बत्ती बना, मिट्टी के दिए से प्रकाश कर, हमारा निर्वाह हो जाएगा।"

गाँधीजी रेल, ट्राम, मोटर-आदि के विरुद्ध हैं। उनके विचार में इनसे कुछ लाभ नहीं। वे कहते हैं—"यह सब आवश्यकताएँ स्वयं हमारी अपनी बढ़ाई हुई हैं। इतनी तेज़-रफ्तार से सैकड़ो मील दौड़ने की आवश्यक्ता ही क्या है? यह सब पश्चिमीय सभ्यता का अभिशाप है। मैशीनरी तो साँप के छिद्र के समान है, जहाँ एक छिद्र में एक साँप के साथ सैकड़ों साँप हो जाते हैं.........कल-कारख़ाने होंगे, तो बडे-बड़े नगर भी होंगे। बड़े नगर होंगे, तो ट्राम-गाड़ी भी चलेगी। फिर बड़े नगरों को मिलने के लिये रेल भी चाहिए। बडे शहरों मे बिजली का प्रकाश भी होना चाहिए।"

प्राकृतिक ढङ्ग से रहने पर मनुष्य को इन वायु-गति से चलने वाले यन्त्रों की आवश्यकता ही क्या है? मनुष्य को अपनी गति-विधि को वहीं तक परिमित रखना चाहिए, जहाँ तक उसके साथ-पैर उसे ले जा सकें। हम स्वयं अपने क्षेत्र को बढ़ाकर अपनी अड़चनें बढ़ा लेते हैं। हम सदा अपनी शक्ति और सामर्थ्य से बढ़कर काम करना चाहते हैं। दुनिया के कोने-कोने में हम अपना

हाथ फैलाना चाहते हैं। रेलवे हमारी अनेक उलझनों की जड़ हैं। इन उलझनो मे फंसकर हम अपने कर्ता को भूल जाते हैं।

गाँधीजी का विचार है—"किसी समय भारत में देवता निवास करते थे। परन्तु अब मिलों के धुएँ से भरे हुए आकाश तथा मैशीनों के कोलाहल से पूर्ण वातावरण मे, और वायु-वेग से चलते इञ्जनों के बीच, देवता किस प्रकार रह सकते हैं?"

महात्माजी के अनुयायियों और विरोधियों ने उन्हें इस संकीर्णता से निकालने का बहुत प्रयत्न किया है, परन्तु कोई उन्हें समझा नहीं सका। अपनी पुस्तिका 'भारत मे स्वराज्य' में इसी विषय के तर्क करते हुए काल्पनिक पाठक के मुख से गाँधीजी प्रश्न कराते है—"यदि मैशीन न होती, तो आपके विचार संसार के सम्मुख किस प्रकार आ सकते थे?" गाँधीजी इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—"जिस प्रकार विष से विष का उपचार होता है, ठीक उसी ढंग से मैं भी मैशीन-द्वारा मैशीन का विरोध कर रहा हूँ। मेरा लेख मैशीन को खबरदार कर देता हैं—देखो, मैं तुम्हारा विरोध करने जा रहा हूँ।"

आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टि से महात्माजी के मैशीनरी के प्रति विरोध का वर्णन तो हम ऊपर ही कर चुके हैं। टागोर के शिष्य राम के यह पूछने पर कि वे किस सीमा तक मैशीनरी के विरोध में हैं?—अर्थात कपड़े सीने की मैशीन, बाइसिकल और मोटर में वे किस-किस को सहन कर सकते हैं? उन्होंने उत्तर दिया—"बाइसिकल सौर मोटर मनुष्य के लिये सर्वथा अनावश्यक हैं।" वे कहते हैं—"मैशीनरी मनुष्य को पार्थिवता के सम्बन्ध से बाँधकर उसकी मुक्ति के मार्ग मे अवरोधक बन जाती है। मनुष्य का शरीर भी तो एक मैशीन है, इसी से तो वह आत्मा को थाँवे हुए है। उसे स्वतन्त्र रूप से उड़ नहीं जाने देता।"

१२

महात्माजी का मैशीनरी के प्रति विरोध, उनके पश्चिमीय सभ्यता के प्रति विरोध का एक अंश-मात्र है। गाँधीजी पश्चिम की भौतिक सभ्यता तथा मैशीनरी के साथ सम्बन्ध उनकी संस्कृति के विरुद्ध हैं।

भारत की जनता का एक भाग देश में पश्चिमीय सभ्यता के अनुरूप औद्योगिक उन्नति कर, देश को सम्पन्न बनाने का प्रयत्न कर रहा है, परन्तु गाँधीजी देश में पूँजीवाद के इस विकार के पक्ष में नहीं हैं। गाँधीजी कुछ व्यक्तियों को अत्यन्त समृद्ध बनाने की अपेक्षा समाज के बड़े भाग के लिये जीवन की साधारण आवश्यकताओं का प्रबन्ध करना अधिक आवश्यक समझते हैं।

उनके विचार में मनुष्य-समाज का आदर्श कुछ व्यक्तियों के ही हाथमें सब धन-दौलत न देकर प्रत्येक मनुष्य को जीवन-निर्वाह-योग्य सुविधा देना होना चाहिए। किसी देश की सफलता अथवा समृद्धि गाँधीजी के विचार में देश में लखपतियों की संख्या से नहीं, प्रत्युत भूखे मरनेवाले लोगों से लगाई जानी चाहिए। जिस देश में कोई

सौ मनुष्य भूख की ज्वाला से न तड़पता हो, वह देश, लखपतियों और करोड़पतियों के न होते हुए भी समृद्ध और सपन्न है।

यूरोपीय सभ्यता के विकास की निस्सारता पर विचार प्रकट करते हुए आपने लिखा है—"आज यूरोप के लोग भव्य प्रमादों में रहते हैं। सौ वर्ष पूर्व यह मकान नहीं थे। उस समय के लोग खाल पहन कर निर्वाह करते थे, परन्तु वे आज खूब चमकीली-भड़कीली पोशाक पहिनने लगे हैं। उस समय भाला ही उन लोगों का शस्त्र था परन्तु आज छः या सात गोली का पिस्तौल उनकी जेब में रहता है। उस समय वे लोग हाथ में हल थामकर खेत जोतते थे, परन्तु आज इञ्जन की सहायता से कई एकड़ जमीन वे पल-भर में जोतकर रख देते हैं। आज यूरोप में धन की असीम वृद्धि हो रही है। पहिले गिने-चुने लेखक ही बहुत मननपूर्वक कोई ग्रन्थ लिख पाते थे, परन्तु आज जो-चाहे पुस्तक लिखकर, छपवाकर, जनता के दिमाग को भ्रम में डाल सकता है। उस समय युद्ध में जय-पराजय मनुष्य की शारीरिक सामर्थ्य पर निर्भर थी, परन्तु आज एक मनुष्य तोप ले, एक पहाड़ी पर बैठकर हज़ारों मनुष्यों को भून सकता है। यही है यूरोपीय सभ्यता का विकास! पहिले कारीगर स्वच्छन्दता से अपनी आवश्यकता-भर काम कर लिया करते थे, परन्तु आज हज़ारों कारीगरों को एक स्थान पर बन्द होकर, स्वास्थ्य के लिये हानिकर काम को, पूँजीपति के लाभ के लिये, घंटों करना पड़ता है। पहिले मनुष्य दिन में दो या तीन बार घर का बना भोजन किया करते थे, परन्तु अब प्रायः प्रति दो घण्टे के बाद कुछ-न कुछ खाना होता है; किसी अन्य काम के लिये फ़ुरसत ही नहीं रहती।"

गाँधीजी के विचार में यूरोप भौतिक सभ्यता के दबाव में पिसा जा रहा है। भौतिक सभ्यता के प्रवाह ने यूरोप की मानसिक और

आध्यात्मिक उन्नति को बिल्कुल रोक दिया है। यूरोप आज ईश्वर को भुलाकर धन की पूजा मे उन्मत्त है। वह अपनी उन्नति और विकास का हिसाब पाउण्ड, शिलिंग और पेंस से लगाता है। रोम और मिश्र के उदाहरण देकर महात्माजी ने प्रमाणित किया है, कि जो राष्ट्र भौतिक उन्नति का आदर्श लेकर संसार में आगे बढ़े हैं, उन्हे सदा औंधे-मुँह गिरना पड़ा है। यूरोप भी इसी साम्राज्य और भौतिक विकास के फन्दे में फंसा है। उसका परिणाम भी यूरोपीय महाभारत के रूप में स्पष्ट है। यूरोप के इस महायुद्ध का कारण पार्थिवता के शैतान की पूजा ही है। देश-भक्ति और वीरता के नाम पर पाप अमानुषिक अत्याचारों का समर्थन किया जाता है, विश्वासघात और छल-कपट की प्रशंसा की जाती है। और इन सबका कारण है—भौतिक सभ्यता का आदर्श।

गाँधीजी भारत को यथा-सम्भव भौतिक सभ्यता के जाल से बचाना चाहते हैं। यूरोप के अनुकरण मे पूंजीवाद को प्रोत्साहन न देकर वे इसे भारत से निकाल देना चाहते हैं। उनका विश्वास है, यदि हम यूरोप के धन-दौलत के पीछे जायँगे, तो हमे उनकी सभ्यता के अभिशाप को भी सहन करना पड़ेगा। यह आशा करना कि भारत में पूंजीवाद का परिणाम वैसा बुरा न होगा, अपने-आपको धोखा देना है।"

गाँधीजी भारत के लिए न-केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही चाहते हैं, वल्कि वे देश को यूरोपीय सभ्यता के विपाक प्रभाव से भी दूर रखना चाहते हैं। वे अनेक अवसरों पर स्पष्ट कह चुके हैं; कि यूरोपियन विचार-धारा और पश्चिमीयता को देश से निकाले बिना अंग्रेज़ी शासन को दूर करने का कुछ भी अर्थ नहीं है। इसलिए गाँधीजी उन सब संस्थाओं, प्रवृत्तियों और प्रणालियों के विरुद्ध है, जिनसे देश में पश्चिमीय सभ्यता का प्रचार हो रहा है।

महात्माजी यूरोप की शासन-प्रणाली के-विशेषतः पार्लियामेंट के-बहुत विरुद्ध हैं। वे पार्लियामेण्ट को सर्वथा निरर्थक, केवल एक बाँझ स्त्री के समान, समझते हैं, जिसमे दिखावे के अतिरिक्त वास्तविकता नाम को भी नहीं है। इसे वे इङ्गलैण्ड का एक क़ीमती खिलौना कहते हैं। भारत में १९१९ के सुधार के अनुसार स्थापित प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं मे भी महात्माजी को बिल्कुल विश्वास न था। इसीलिये उन्होंने उनका बहिष्कार भी किया।

अन्य विचारों की भाँति गाँधीजी तथा टॉल्सटॉय के विचारों में यहाँ भी विचित्र सादृश्य है। प्रजातंत्र-शासन के विषय में सोमनाथ ने जब अपने गुरु की सम्मति जाननी चाही, तो टॉल्सटॉय ने उत्तर दिया—'इस विषय मे मेरी सम्मति ठीक वही है, जो पाप अथवा एक सन्यासी की वेश्यावृत्ति के विषय में हो सकती है।'

गाँधीजी अदालतों और कचहरियों के भी कट्टर विरोधी है। वे सरकारी अदालतों को, भारत मे विदेशी शासन के दृढ़ बनाए रखने का साधन ही समझते हैं। अदालतों की भाँति वे वकीलों के भी विरुद्ध हैं। उनका विचार है, वकील समाज में शान्ति-रक्षा के स्थान पर कलह की वृद्धि कर, केवल उलझनें ही पैदा करते हैं। डॉक्टरों, अंग्रेजी औषधियों और अस्पतालों के भी वे उतने ही विरुद्ध हैं। इस विषय में उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है। इस पुस्तक को पढ़कर कोई भी यूरोपियन विस्मित हुए बिना न रह सकेगा। गाँधीजी लिखते हैं—'यह चिकित्साशास्त्र केवल जादू का ढकोसला मात्र है।" इन डॉक्टरों से तो वे नीम हकीमों को ही अच्छा समझते हैं। गाँधीजी अस्पतालों की उपमा शैतान के घर से देते हैं, और दवा खाना महापाप बताते हैं। अपनी पुस्तक 'स्वास्थ्य-रक्षा' मे आप लिखते हैं—

"हम लोगों का यह गहरा भ्रम है, कि दवाई के बिना रोग दूर हो ही नहीं सकता। इस भ्रम ने मनुष्य-समाज की बहुत अधिक हानि की है। रोग तथा व्याधि का उपचार अवश्य होना चाहिए, परन्तु उसका उपाय औषध नहीं है। औषधियों से न-केवल कोई लाभ नहीं, वलिक प्राय' उससे हानि होने की सम्भावना रहती है। रोग होने पर दवाई खाना ठीक उसी तरह है, जैसे घर में पड़ी हुई गन्दगी को ढाँक देना। रोग का मतलब यही है, कि शरीर के किसी भाग में गन्दगी अटक रही है। ऐसी अवस्था मे उस गन्दगी को औषध से ढाँक देने से क्या लाभ? उसे तो प्राकृतिक नियम के अनुसार स्वयं दूर होने देना ही उचित है। दवाइयों से बीमारी को ढाँक देना प्रकृति के मार्ग में रुकावट डालना है।"

गाँधीजी के इन विचारो का कारण संभवतः आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र के प्रति उनकी अभिज्ञता ही हो, परन्तु उपरोक्त ऐतराजों के अलावा गाँधीजी को बीमारी का इलाज करने में आध्यात्मिक आपत्ति भी है। उनका विचार है, यदि मनुष्य अपनी भूल-चूक के परिणामों को औषधियों की सहायता से सदा टालता रहेगा, तो भूल करना वह कभी न छोड़ेगा। वह सदा ही भूल-चूक में फँसता ही रहेगा। वे कहते हैं—"अस्पताल पाप को बढ़ाने का काम करते हैं। अपने कर्मों का दण्ड पूर्ण रूप में न मिलने से मनुष्य को बुराई करने की ओर पुनः प्रवृत्ति होती है।"

गाँधीजी सब रोगों का उपचार आध्यात्मिक ढंग से करना चाहते हैं। पश्चिमीय चिकित्सा-विधान से उनके असहयोग का एक यह भी कारण है, कि डॉक्टर केवल शरीर का ही इलाज करते हैं, मनुष्य की आत्मा की ओर उनका ध्यान बिल्कुल ही नहीं जाता। एक अवसर पर उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा था—"मैं चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थियों और आचार्यों से प्रार्थना करूंगा कि

वे केवल शरीर की ओर ही ध्यान न कर, मनुष्य की आत्मा की ओर भी ध्यान दें। मेरा विश्वास है, इससे उन्हें शारीरिक चिकित्सा से आश्चर्यजनक सहायता मिलेगी। जिस मनुष्य का जीवन उचित मार्ग पर चलता है, उसके रोगी होने का कोई कारण हो ही नहीं सकता। आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली रोग और व्याधि का मूल कारण मनुष्य की आत्मा और मस्तिष्क में न ढूंढकर केवल शरीर में ढूंढती है। इसलिए वह पूर्ण और चिरस्थायी स्वास्थ्य-लाभ नहीं करा सकती।"

गाँधीजी के यह विचार भी टॉल्सटॉय के सिद्धान्तों की प्रतिच्छाया से जान पड़ते हैं। यदि हम टॉल्सटॉय की अप्रकाशित डायरियों में, औषधियों और चिकित्सकों के प्रति उनके विचारों का अध्ययन करें, तो वहाँ भी हमें ठीक यही विचार मिलेंगे।

टॉलसटाय अपनी डायरी में लिखते हैं—"यह देखकर विस्मय होता है, कि मनुष्य अपने रहन सहन, खान-पान तथा व्यवहार की अनेक सुन्दर वस्तुओं पर भी इतना व्यय नहीं करता, जितना कि वह डॉक्टरों और वकीलों के व्यथ, वल्कि हानिकर, कार्यों की फ़ीसों में दे देता है। आजकल की चिकित्सा-प्रणाली लाभ के स्थान में हानि ही अधिक कर रही है।...रोगी मनुष्य यह नहीं समझते कि उनके जीवन का स्रोत आध्यात्मिक शक्ति में है। आध्यात्मिक शक्ति यह भौतिक नियमों पर आश्रित नहीं है।......आजकल जनता प्रायः इस भ्रम में फंसी हुई है, कि औषध से मनुष्य के शरीर को लाभ पहुँचता है और औषध बाँटना मनुष्य-समाज की भलाई करना है। वास्तव में भलाई-बुराई का कुछ भी अर्थ नहीं। यदि आपके मन में शुभ कामना है, तो आप औषध बाँटे बिना भी समाज का बहुत कल्याण कर सकते हैं......।"

यूरोपियन सभ्यता की प्रचारक जिन संस्थाओं के महात्माजी

विरुद्ध हैं, उसमें-से स्कूल और कॉलेज भी एक हैं। शिक्षा के विषय में महात्माजी के विचारों को समझने के लिये हमें पहिले अंग्रेजी सरकार-द्वारा भारत मे स्थापित स्कूलों की शिक्षा-प्रणाली और उनके प्रभाव को समझ लेना होगा। यह स्कूल निरन्तर एक साक्षर तथा दास-वृत्ति-युक्त युवक-समुदाय को जन्म दे रहे हैं। इनमें शिक्षा पाए हुए युवक बे-घर-बार, बे-कारोबार के हो, गिने-चुने व्यवसायों में नौकरी की तलाश में फिरते रहते हैं। इस अवस्था को देखकर महात्माजी भारत मे केवल उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के लिये ही शिक्षा लाभदायक समझते है। नीचे श्रेणी के व्यक्तियों को शिक्षा देने का महत्व उनकी दृष्टि में कुछ भी नहीं है। वे कहते हैं—'यदि किसानों के बालक थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना और हिसाब सीखकर अपने घर-बार के काम के अयोग्य हो जॉय, तो इस शिक्षा की हमें आवश्यकता नहीं।'

गॉधीजी के राजनैतिक प्रतियोगी शंकरन् नायर ने गॉधीजी के इन विचारों की कड़ी समालोचना की है। वे लिखते हैं—"गॉधीजी जिस शिक्षा-प्रणाली का समर्थन करते हैं, उसको इस देश में बहुत समय तक आजमाया जा चुका है। इस शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू और मुसलमानों में, द्विजों और अन्त्यजों मे वह भेद-भाव आ गया है, जिसका दूर करना अत्यन्त दुष्कर है। गॉधीजी भारत के निम्न श्रेणी के लोगों में शिक्षा का प्रचार इस भय से नहीं करना चाहते कि उनलोगों में जागृति आ जाने से वे अपनी तिरस्कृत अवस्था में सन्तुष्ट न रह सकेंगे। गॉधीजी इन लोगों को अपनी दासता की वर्तमान परिस्थिति से उठने नहीं देना चाहते।"

गॉधीजी ने शंकरन् नायर के इस दोषारोपण का उत्तर यों दिया है। वे कहते हैं—"मैं भारत के प्रचलित वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध इसलिये हूँ, कि मुझे उसमें हानि के अतिरिक्त लाभ

कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता। स्कूलों में जो पाठ्य पुस्तकें बालकों को पढ़ाई जाती हैं, उनमे औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान कुछ भी नहीं हो पाता। ज्यों-ज्यों बालक इन पुस्तकों को पढ़ता है, वह अपने समाज से दूर होता जाता है। बालकों को इन पाठ्य पुस्तकों मे यह बताया जाता है कि तुम्हारे पूर्व-पुरुष असभ्य, जंगली और असमर्थ थे। मैं इन पुस्तकों को हटाकर इनके स्थान मे नवीन पाठ्यक्रम प्रचलित करने के पक्ष में हूँ, जिससे बालकों को अपने देश, अपने समाज और अपनी सभ्यता का ज्ञान हो, उस ओर उनकी श्रद्धा हो, अपने देश और समाज की परिस्थितियो के अनुकूल वे अपने जीवन को लाभदायक और उपयोगी बना सकें, बालकों के मन मे श्रम के प्रति अनुराग उत्पन्न हो, एक किसान बालक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त कृषि के अयोग्य न होकर अच्छा किसान बन सके। मैं जानता हूँ, वर्तमान-शिक्षा क्रम का परिणाम इसके विपरीत होता है। इसीलिये मैं उसके विरुद्ध हूँ। यह सब सुयोग्य अध्यापकों के जीवन के सत्संग के बिना नहीं हो सकता। आज ऐसे अध्यापक कहाँ हैं? क्या इन अध्यापकों ने स्वयं कभी वास्तविक शिक्षा ग्रहण की है? क्या उनका जीवन बच्चों के लिये आदर्श है? आज हमारे प्राइमरी स्कूलों मे बालकों की शिक्षा के लिए चुनकर सुयोग्य अध्यापक नियुक्त नहीं किये जाते। जिन लोगो को और कोई दूसरा व्यवसाय नहीं मिलता, वे अध्यापकी काम कर लेते है।

'मैं भारतवर्ष के लिये अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं। इससे कुछ लाग यह समझते हैं कि मैं पश्चिमीय सभ्यता और अंग्रेज़ी भाषा का कट्टर शत्रु हूँ। 'यग इण्डिया' के पाठक यह भली भाति जानते हैं कि मैं अंग्रेजी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा राजनैतिक-व्यवहार के लिये आवश्यक

मानता हूँ। इसलिये मेरी सम्मति मे हममे-से कुछ-एक व्यक्तियों के लिये इस भाषा का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। अंग्रेज़ी भाषा मे अनमोल साहित्यिक रत्न भरे पडे हैं। वह अमूल्य विचारो का भण्डार है। इसलिये यदि लोग भाषा-ज्ञान के लिये अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन करें, तो वह भी अच्छा है। ऐसे विद्वानों को चाहिए कि उत्कृष्ट ग्रन्थों का अनुवाद अपनी भाषा में करने का प्रयत्न भी करें।

"मैं अपने देश और समाज को संसार के सम्पर्क से पृथक कर लेने के पक्ष में कदापि नहीं हूँ। परन्तु मैं चाहता हूँ, विदेशी सभ्यता के गुणों को ग्रहण करने से पहले हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को समझ लें......।"

गाँधीजी बराबर अपने देशवासियों का ध्यान भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता की ओर आकर्षित करते रहते हैं। वे कहते हैं, भारतीय संस्कृति मे आनन्द का स्रोत शरीर को नहीं, बल्कि आत्मा को माना गया है। प्राचीन काल और प्राचीन सभ्यता की प्रशंसा करते वे नहीं थकते। वे लिखते हैं, "उस समय शीघ्रगामी रेलें और मोटरें न थीं। उपदेशक और आचार्य देश के कोने-कोने में धर्म का सन्देश पहुँचाते फिरते थे। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार काम करता था, और उसकी आवश्यकता के अनुसार उसे निर्वाह के साधन भी प्राप्त हो जाते थे। यह नहीं, कि हमारे पूर्वज यन्त्रों का आविष्कार करना न जानते थे, वास्तव में यंत्रों का दास बनाना उन्हें मंजूर न था। वे जानते थे कि बड़े-बडे नगर शान्ति के बाधक हैं, इसलिये वे सदा ग्रामों में ही रहते थे।

गाँधीजी कहते है—"भारत ही एक ऐसा देश है, जो परिवर्तन के चक्र में सहस्रों वर्षों तक अपनी सभ्यता को बिना परिवर्तन के स्थिर रख सका है। भारत ने बड़े प्रयत्न और परिश्रम से अपनी

आदिम सभ्यता की रक्षा की है। फिलहाल उसे किसी से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं। हमारा हल और चरखा हमारी सभ्यता की आधार-शिला है। हमें अपनी प्राचीन सरलता की ओर फिर से जाना होगा। प्रत्येक भारतीय का यह वैयक्तिक कर्तव्य है, कि वह अपने जीवन से उस सरल सभ्यता का अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित करने का प्रयत्न करें।"

१३

सभी भारतवासी गाँधीजी के सिद्धान्तों के अनुयायी नहीं हैं, और न वे उनके बतलाए हुए मार्ग पर चलने को तैयार ही हैं। कुछ तो पश्चिमीय सभ्यता के विरुद्ध महात्माजी के इस आन्दोलन को देश की उन्नति का अवरोधक समझते हैं। ऐसे लोग उन्हे सुधार का विरोधी और अत्यन्त संकीर्ण मानते हैं। इन लोगो मे शंकरन् नायर आदि का विचार है, कि गाँधीजी के विचारों की सफलता का अर्थ भारत की इस समय तक की औद्योगिक उन्नति पर पानी फेर देना होगा। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के नाम पर यह लोग देश में अपना पूर्ण अधिपत्य क़ायम किया चाहते हैं।

कवि सम्राट टैगोर भी इस विषय में गाँधीजी के साथ सहमत नहीं हैं। उनके विचार मे पश्चिम से सर्वथा असहयोग का अर्थ देश की आध्यात्मिक आत्म-हत्या होगा। वे कहते हैं—"पश्चिम के मनुष्य समाज का अपना सन्देश है। यदि हम कृत्रिम उपायों से यूरप के साथ अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे, तो उससे स्वयं हमें ही हानि होगी। संसार से परे हटकर कोई भी देश उन्नति नहीं

कर सकता। विदेश से दूर भागने से स्वतंत्रता हमारे निकट न आ जायगी।"

महात्माजी उनपर लगाए गए इस संकीर्णता के दोष की सफाई न देकर, उसे मुक्त-कंठ से स्वीकार कर, कहते हैं—"भारत अपनी प्राचीन संस्कृति तथा प्रथाओं की सावधानी से रक्षा करते ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर उन्नति कर सकता है।" टैगोर के एक पत्र के उत्तर में गाँधीजी ने लिखा था—"मैं भी स्वतंत्र और स्वच्छन्द वायु का प्रेमी हूँ। सब द्वार बन्द कर, हुमस पैदा करना मुझे भी पसन्द नहीं, परन्तु विदेशी सभ्यता मुझे अपने घर में खींचकर न ले जा सकेगी। मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि संसार के किसी देश की सभ्यता मे हमारी सहायता से अधिक अमूल्य रत्न न मिलेंगे।......जिस वस्तु को हमने सैकड़ों वर्षों के अनुभव से समय की चाल पर ठीक बजाकर देख लिया हैं उसे बदलने के लिये हम किस प्रकार तैयार हो जाँय? यह परिवर्तन-रहित, एक रस दृढ़ता ही तो भारतीय सभ्यता की विशेषता है; यही तो उसके जीवन की आधार शिला है।"

गाँधीजी की दृष्टि मे भारतीय संस्कृति की विशेषता है, उसका आध्यात्मिक और धार्मिक आधार। गाँधीजी राजनीति को धर्म और संस्कृति से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं मानते। महात्माजी की यह आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता हिन्दू-धर्म-शास्त्रों से सम्बद्ध नहीं है। इसका आधार है, उनकी अपनी कर्तव्य तथा नीति की धारणा। उनकी विचार-धारा की आधार शिला है, मनुष्य की आत्मा में अन्तर्निहित सत्यनिष्ठा। वे इस सत्य और पवित्रता को धार्मिक विश्वास तथा साम्प्रदायिकता से ऊंचा स्थान देते हैं। उनका विश्वास है, मनुष्य की अन्तरात्मा सदा व्यक्त होने तथा अपने कर्ता को पाने के लिये छटपटाती रहती है।

गाँधीजी को अपने हिन्दुत्व पर अभिमान है। हिन्दुओं के धर्म-शास्त्रों, श्रुतियों तथा स्मृतियों में उन्हें पूर्ण श्रद्धा है। अवतार धारण और वर्णाश्रम धर्म मे भी उन्हे पूर्ण विश्वास है। गोरक्षा को भी वे अपेक्षाकृत अधिक युक्तियुक्त ढंग पर हिन्दुओं का जातीय धर्म क़रार देते हैं।

यह न समझना चाहिए कि हिन्दू-धर्म पर इस अगाध विश्वास का कारण गाँधीजी का अन्य सम्प्रदायों के प्रति अज्ञान है। जैसा कि हम पहिले भी कह आए हैं, गाँधीजी ने मसीह तथा मुहम्मद के सिद्धांतों का पर्याप्त अध्ययन किया है। महात्माजी के विचारों पर मसीह के जीवन तथा उनकी शिक्षा, विशेषकर उनके 'पहाड़ पर के धर्मोपदेश' का गहरा प्रभाव पड़ा है। अनेक अवसरों पर उनके मित्रों ने जब उनसे ईसाई-धर्म की दीक्षा ले लेने के लिये प्रेरणा की, तो गाँधीजी ने उत्तर दिया—"मै मानता हूँ, ईसाई-धर्म में सत्य की पर्याप्त मात्रा मौजूद है, मैं उसपर हिन्दू-धर्म से भी अधिक श्रद्धा कर सकता हूँ, परन्तु मेरी आत्मिक शक्ति के लिये मेरे पूर्वजो का मत ही पर्याप्त है। मुझे आध्यात्मिक उन्नति के साधन हिन्दू-धर्म में पर्याप्त मात्रा में मिल सकते हैं। मैं चाहता हूँ, सभी लोग अपने-अपने धार्मिक विश्वास पर दृढ़ रहकर आत्मिक उन्नति की चेष्टा करें। मैं समझता हूँ, भगवान् हमारे कृत्यों को देखते हैं, न कि हमारे नाम और सम्प्रदाय को।"

धार्मिक असहिष्णुता और संकीर्णता का महात्माजी मे सर्वथा अभाव है। यहाँ तक कि वे वेद-आदि हिन्दू-धर्म ग्रन्थो को ईश्वरीय कहना भी नितान्त आवश्यक नहीं समझते। वे कहते हैं—"मैं वेदों के समान ही बाइबिल, क़ुरान और जिन्दावस्ता को भी ईश्वरीय समझता हूँ। इतना मानते हुए भी यह आवश्यक नहीं, कि इन धर्म ग्रन्थों के एक-एक शब्द को मैं ईश्वरीय आज्ञा मानकर उसका

पालन करने के लिये अपने-आपको बाध्य समझूँ। समय के प्रभाव से इन पुस्तकों मे अनेक क्षेपक आ गए हैं, और उनकी व्याख्या भी मनमाने तौर पर अनेक ढंग से की गई हैं।" गाँधीजी के विचार में हिन्दू-धर्म के अनुसार मनुष्य के जीवन मे सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का होना ही जीवन की सार्थकता है। महात्माजी कहते हैं, "हिन्दू धर्म किसी के लिये भी अगम्य और दुर्बोध नहीं हो सकता। वह स्वभावतः सरल, सुबोध और अपरिवर्तनशील है।"

गाधीजी ने एक लेख मे अत्यन्त मधुर शब्दों में अपने पूर्वजों के धार्मिक विश्वास मे अनेक त्रुटियों को स्वीकार करते हुए, हिन्दू-धर्म के प्रति अपनी अनन्त श्रद्धा के वर्णन में, यों लिखा है—"हिन्दू धर्म के प्रति मेरे हृदय में कितना स्नेह है, यह ठीक-ठीक कहना मेरे लिये सम्भव नहीं—ठीक उसी प्रकार, जैसे मैं अपनी स्त्री के प्रति अपने प्रेम का वर्णन् नहीं कर सकता। चाहे मेरी स्त्री में कितने ही दोष क्यों न हों, संसार में मैं किसी स्त्री को उस दृष्टि से नहीं देख सकता। मैं जानता हूँ, मोह या स्नेहवश मैं उसके अनेक अवगुणों को प्रायः देख भी नहीं पाता। जिस प्रकार एक निगूढ़ आकर्षण मुझे अपनी स्त्री की ओर खींचे हुए है, ठीक उसी प्रकार हिन्दू-धर्म में अनेक दोष और त्रुटियों को देखकर भी मैं उससे परे नहीं जा सकता। हिन्दू-धर्म की दो पुस्तकों मे-से मेरा थोड़ा-बहुत परिचय है। इन दोनों पुस्तकों, रामायण और गीता, से बढ़कर मोहक और शान्तिदायक पुस्तक संसार में मैंने दूसरी नहीं देखी। जिस समय रोगशैय्या पर मैंने यह अनुभव किया, कि मेरा अन्तिम समय आ पहुँचा है, उस समय गीता को मैंने हाथ में ले लिया। हिन्दू-मन्दिरों मे जो कुछ अनाचार फैल रहा है, उसे मैं खूब समझता हूँ, परन्तु उसे जानकर भी मैं उनसे प्रेम किए बिना नहीं रह सकता। मैं हिन्दू-धर्म में सुधार चाहता हूँ, परन्तु उसे अंग-

विहीन नहीं कर सकता।" अपने पूर्वजों की दूरदर्शिता में गम्भीर विश्वास के कारण ही गाँधीजी वर्णाश्रम धर्म का भी समर्थन करते हैं। टैगोर तक इस भारतीय समाज के लिये अभिशाप मान, इसे देश से निकाल देना चाहते हैं, परन्तु गाँधीजी इसमे भी अपने समाज का हित और कल्याण देख पाते हैं।

टैगोर भारत की वर्ण-व्यवस्था को देश के लिये सर्वथा अनिष्टकर समझते हैं। उनके विचार में समाज से अज्ञान और निर्बलता को दूर करने के लिये, हमारा जाति-पाँति के बन्धन से मुक्त होना आवश्यक है। टैगोर देश की इस दुरवस्था का उत्तरदायित्व समाज के उस शिक्षित अंश पर डालते हैं, जो सब-कुछ समझ-बूझ कर भी अपना सन्मान बनाए रखने के लिये इस कुप्रथा को समाज से दूर करना नहीं चाहता।

गाँधीजी वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त को पूर्ण रूप में मान्य समझते हैं। हिन्दू-धर्म के ढंग से वर्ण-व्यवस्था को हटाकर यूरोपियन ढंग पर समाज में श्रेणी-व्यवस्था को प्रचलित करने के गाँधीजी सर्वथा विरुद्ध हैं। गाँधीजी की सम्मति में वंशानुक्रम अनिवार्य और आवश्यक है। उनके विचार में इस नियम की अवहेलना करने से परिणाम में केवल दुविधा और अशान्ति ही प्राप्त होगी। वे लिखते हैं—"ब्राह्मण को ब्राह्मण के आसन पर स्थित रखने में मुझे अनेक लाभ दिखाई पड़ते हैं। यदि हम समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसके गुण-कर्म के अनुसार दण्ड और पुरस्कार देने तथा उसकी सामाजिक परिस्थिति को निश्चित करने का उत्तरदायित्व अपने सिर ले लें, तो हमें इसमें बहुत कठिनाई अनुभव होगी। यदि हिन्दू-लोग आत्मा के पुनर्जन्म लेने के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं, तो उन्हें इस विषय में चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण के घर जन्म लेकर ब्राह्मण के योग्य व्यवहार

नहीं करता, तो वह निस्सन्देह भविष्य-जीवन में नीच वर्ण में जन्म ग्रहण करेगा, और यदि कोई मनुष्य नीच वर्ण का होकर भी द्विजों के समान जीवन व्यतीत करता है, तो वह स्वयं ही अगले जन्म में उच्च कुल मे जन्म ग्रहण करेगा......।"

यह नहीं कि गाँधीजी सुधार के विरुद्ध हों। वे मुख्य चार वर्णों को छोड़कर शेष असंख्य उपजातियों को सर्वथा मिटा देना चाहते हैं। मुख्य चार वर्णों को ही वे महत्वपूर्ण तथा आवश्यक भी समझते हैं। यदि किसी प्रथा मे कोई दोष हो, तो वे प्रथा को ही न मिटाकर उसके दोषों को दूर करना ही उचित समझते हैं। वे लिखते हैं—"मैं वर्ण व्यवस्था के मूल सिद्धान्त को मिटा देने के विरुद्ध हूँ। वर्ण व्यवस्था का अर्थ असमानता तथा सामाजिक भेद-भाव नहीं है। अनेक उपवर्गों तथा उपजातियों का उपाय हम लोकमत के प्रभाव से कर सकते हैं।"

गाँधीजी का विश्वास है, संकट के समय कुछ अन्य क्रमागत प्रथाओं के साथ मिलकर वर्ण-व्यवस्था ने ही हिन्दू-धर्म की रक्षा की है। इसलिये गांधीजी—प्राचीन संस्कृति को हटा, उसके स्थान में मौलिक परिवर्तन कर, जो लोग भारत में पश्चिमीय सभ्यता का प्रचार करना चाहते हैं—उनके विचारों को समाज के लिये हितकर नहीं समझते।

उनका विश्वास भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता में इतना गहरा है, कि वे उसके सम्मुख यूरोप की तमाम सभ्यता और संस्कृति को हेय समझते हैं। भारतीय सभ्यता अथवा संस्कृति में जो-कुछ -दोष उनको दिखाई पड़ते हैं, उन्हें वे केवल काल के प्रभाव से आए हुए विरूप-मात्र समझते हैं, जिन्हें किसी भी समय ठीक किया जा सकता है। अनेक दोषों के होते हुए भी भारतीय सभ्यता के मूल में जो आध्यात्मिकता तथा गम्भीर सत्य छिपा हुआ है, उसके कारण

गांधीजी उसे सब अवस्था में ग्राह्य तथा श्रेयस्कर समझते हैं। इसके विपरीत यूरोपियन सभ्यता के तो मूल में ही उन्हे पार्थिवता तथा नाश का बीज दिखाई पड़ता है।

गांधीजी लिखते हैं—"मैं अपनी सभ्यता के दोषों को खूब समझता हूँ, और उन्हे स्वीकार भी करता हूँ। मैं उनका विरोध भी ख़ूब करता हूँ। इन दोषों के होते हुए भी भारतीय सभ्यता ईश्वर-विश्वास पर आश्रित है, इसलिये मैं उसपर भरोसा करता हूँ। यूरोपीयता ईश्वर से विमुख है, इसलिये वह श्रेय नहीं। प्रत्येक भारतवासी को, जो अपने देश से प्रेम करता है, अपने राष्ट्र का हित चाहता है, अपनी सभ्यता का आश्रय लेना चाहिए। जिस प्रकार बालक के लिये माँ का स्तन सबसे अधिक भरोसे की वस्तु है, उसी प्रकार हमलोगों के लिये हमारी सभ्यता है।"

१४

गाँधीजी के जीवन में भारतीयता कूट-कूटकर भरी हुई है। अपनी प्राचीन सभ्यता के प्रति भक्ति और अपने पूर्व-जनों की प्रथाओं के प्रति अनुराग किसी नवीन तार्किकता के कारण उत्पन्न नहीं हुए हैं। इसका कारण उनके हृदय की भावुकता और प्रेम ही है। दीन-दुखियों के प्रति उनकी सहानुभूति, भारत की स्वतन्त्रता के लिये उनका आन्दोलन, पाप के गढ़े मे फंसी हुई पतित स्त्रियों के उद्धार की चेष्टा उनका चरखा और खद्दर, यह सब उनके हिन्दू-धर्म मे विश्वास और धारणा को तह में अहिंसा और विश्व-प्रेम का सिद्धान्त काम कर रहा है।

अहिंसा के सिद्धांत के अनुसार जीवन की सार्थकता केवल विश्व-प्रेम मे है। घृणा, विद्वेष और निर्दयता प्राकृतिक नियम का विरोध है। घृणा और द्वेष का मार्ग सृष्टि और सृष्टिकर्ता की आज्ञा के विरुद्ध है। जो मार्ग पर चलना चाहता है, उसे क्रोध तथा द्वेष का त्याग करना पडेगा। अपना अपमान करनेवाले, शत्रुता करने-वाले, यहां तक कि चोर तक का घृणा करने का अधिकार उसे नहीं है। जीव-मात्र के प्रति उसके हृदय में करुणा का भाव होना

चाहिए। निन्दा अपमान और अन्याय के उत्तर में उसके हृदय से प्रेम का छलकता हुआ स्रोत बहना चाहिए। गांधीजी के विचार में अहिंसा के सिद्धान्त को जीवन मे पूर्णतः चरितार्थ करना सम्भव नहीं। मनुष्य-समाज शनैः-शनैः इस पूर्णता की ओर बढ़ रहा है। हिन्दू-दर्शन-शास्त्र के अनुसार आधुनिक मनुष्य-समाज अभी तक मनुष्यता की चरम अवस्था को प्राप्त नहीं कर सका है। उसमें पशुता का अंश शेष है। प्रेम और अहिंसा की साधना-द्वारा ही हम पशु-भाव को दूर कर, मनुष्यता के पूर्ण आदर्श की ओर उत्तरोत्तर बढ़ सकेंगे। भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में इसी विषय का रूपक बाँधकर व्याख्या की गई है। अहिंसा का अभिप्राय केवल मनुष्य के प्रति प्रेम और दया ही नहीं, बल्कि जीव-मात्र-पशु, कीट, पतङ्ग आदि के प्रति भी दया और आत्म-भाव है। यदि मनुष्य सृष्टि-कर्ता के अभिप्राय को समझ सकता, तो वह वन्य जीव-जन्तुओं को भी मनुष्य की हिंसा-वृत्ति के उपभोग का साधन-मात्र न समझता।

हिन्दू-धर्म-शास्त्रों के अनुसार अहिंसा का पूर्णतः पालन करने-वाले व्यक्ति के सम्मुख संसार स्वतः झुक जाता है। ज्यों-ही मनुष्य की अन्तरात्मा वैर-विरोध से रहित हो, निर्मल होगी—उसके लिये संसार स्वयं बदल जायगा। उसके लिये संसार में भय-नामक कोई वस्तु ही न रहेगी। उसके शत्रु मित्र बन जाएँगे। अहिंसा संसार को प्रेम और दया से विजय करेगी, बुराई का अवरोध भलाई से करेगी।

अहिंसा के विषय में बौद्ध तथा हिन्दू-शास्त्र सर्वथा एक मत हैं। बौद्ध-धर्म के अनुसार किसी भी अवस्था में, जीवहत्या अथवा जीवों को कष्ट देना निषिद्ध है। बौद्ध-धर्म शास्त्र की आज्ञा है—"किसी भी कारण से, किसी भी अवस्था में, किसी भी जीव की हत्या का तुम्हें अधिकार नहीं। हानि-लाभ की दृष्टि से, अथवा

किसी की आज्ञा मान कर, या आत्म रक्षा के लिये भी, तुम्हें किसी जीव के वध का अधिकार नहीं। अवस्था-विशेष के कारण तुम्हारे दोष में न्यूनाधिकता हो सकती है, परन्तु हत्या कर तुम निर्दोष कभी नहीं हो सकते। तुम्हें पर-रक्षा के लिये केवल अपने शरीर का ही रक्त गिराने का अधिकार है। न-केवल वधिक ही पाप का भागी होता है, वल्कि साथ ही आज्ञा देनेवाला, खानेवाला-सभी पाप के भागी होते हैं।" बौद्ध-धर्म के अनुसार रेशमी वस्त्र, जूते, चप्पल-इत्यादि चमड़े की बनी कोई भी वस्तु, उपयोग में लाना भी पाप है। क्योंकि इन सब कामों में हत्या का पाप लगता है।" बुद्ध भगवान् ने भी बुराई को भलाई से जीतने का उपदेश दिया है। जैनी-लोग अहिंसा व्रत का पालन विशेष यत्न से करते हैं। गाँधीजी के पिता जैनी थे। स्वयं गाँधीजी की शिक्षा-दीक्षा भी जैन-सिद्धान्तों के अनुसार हुई है। बाद में अन्य धर्मों के ग्रन्थों का अध्ययन करने पर वहाँ भी उन्हें अहिंसा के सिद्धान्त का समर्थन मिला। वे स्वयं लिखते हैं—"मेरे विचारों पर अन्य धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के साथ जैन-धर्म के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है। निस्स्वार्थ प्रेम का उपदेश मैंने हिन्दू-धर्म शास्त्रों, बाइबिल, कुरान में एक-समान पाया है। सभी धर्म-शास्त्रों में मैंने अहिंसा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन पाया है। इनसे मेरे विचारों में दृढ़ता अवश्य आई है, परन्तु उसका मूल स्वयं मेरी अपनी अंतरात्मा में आरम्भ से ही था। यदि इन धर्म-ग्रंथों में इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन मैं न पाता तो भी मैं इनपर ही आचरण करता।"

गाय के प्रति महात्माजी की श्रद्धा का कारण किसी अंश तक उनका विश्व-प्रेम ही है। हिन्दू-संस्कृति का यह पहलू यूरोप के लिये सर्वथा दुर्बोध है। महात्माजी ने इसे भी गम्भीर रूप दे दिया है—"गो-रक्षा हिन्दू-धर्म की प्रधान समस्या है।"......"महात्माजी

लिखते हैं—"गो-रक्षा में मुझे मानव-समाज के विकास का एक गूढ़ रहस्य अन्तर्हित दिखाई देता है। गाय में मुझे सम्पूर्ण जीव-सृष्टि का समावेश दिखाई पड़ता है। भारत में गाय मनुष्य-समाज की प्रधान सहायक थी। वह स्मृति का स्रोत है। गाय से केवल दूध ही नहीं मिलता, खेती भी उसके बिना नहीं हो सकती। गाय करुणाता और सरलता की प्रति-मूर्ति है। गो-रक्षा का अर्थ है, प्राणि-मात्र के प्रति दया का भाव। संसार के लिये 'गोरक्षा' हिन्दू-धर्म का सन्देश है। हिंदू-धर्म के प्राण गौ की रक्षा पर ही निर्भर हैं…।"

गाँधीजी अपने लेखों और व्याख्यानों में प्रायः गो-रक्षा का उल्लेख किया करते हैं। उनका विश्वास है, कि हिंदुत्व की सार्थकता वैदिक मात्र के उच्चारण, तीर्थ-यात्रा और वर्ण-व्यवस्था के पालन की अपेक्षा गोरक्षा में ही अधिक है।

गाँधीजी का जीव-दया का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वे विषैले साँप तक को मारने में पाप समझते हैं। भारत में प्रति वर्ष सैकड़ों मनुष्य साँप के काटने से मर जाते हैं। तिसपर भी गाँधीजी साँपों के मारने के पक्ष में नहीं। वे कहते हैं—"हमे स्मरण रखना चाहिए, कि साँप और बिच्छू भी उसी शक्ति की रचना है, जिसने हमें पैदा किया है। भगवान् की लीला को हम समझ नहीं सकते। परन्तु मेरा विश्वास है, उन्होंने सिंह, साँप और बिच्छू को मनुष्य-समाज के नाश के लिये उत्पन्न नहीं किया है।……"

"असीसी के सन्त फ्रान्सिस वनों में नंगे-पैर घूमा करते थे। साँप और वन्य जन्तु कभी उन्हें कष्ट न देते थे। वन्य जीवों के साथ उनकी एक प्रकार से मैत्री-सी हो गई थी। इसी प्रकार सैकड़ो योगी वनों में वन्य जन्तुओं के बीच निर्भय फिरा करते थे। कभी किसी ने वन्य जन्तुओं के द्वारा उन्हें कष्ट दिए जाने की बात नहीं सुनी। मेरा तो पूर्ण विश्वास है, कि यदि मनुष्य वन्य जीवों के

प्रति हिंसा का भाव त्याग दे, तो वे भी कभी उसे दुख न देंगे। प्रेम ही मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है। प्रेम के बिना भगवान् की भक्ति भी निस्सार है।"

गांधीजी भारत की ओर से संसार को अहिंसा का सन्देश देना चाहते हैं। यदि हम अहिंसा के वास्तविक रूप को समझ सकें तो हम संसार की सब बुराइयों का उपाय उससे कर सकते हैं। अहिंसा व्रत का पालन करने से हम धर्म के सभी अङ्गों का पालन अधिक अच्छे ढङ्ग से कर सकते हैं।

यौवन के आरम्भ में ही गांधीजी ने अहिंसा व्रत को ग्रहणकर उसका पालन आरम्भ कर दिया था। एक दफे मि० जे० डोक ने गांधीजी से पूछा—'अहिंसा की ओर आपकी प्रवृत्ति का आरम्भ किस प्रकार हुआ ?' इस प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने बाल्य-काल में स्कूल में पढ़ते समय याद किया हुआ एक पद सुनाया, जिसका अर्थ है—'उपकार के बदले प्रत्युपकार करने में कोई विशेष सौन्दर्य नहीं, सौन्दर्य तो यह है कि अपकार के बदले उपकार किया जाय।' गांधीजी लिखते हैं—इस पद का प्रभाव उनके जीवन पर बहुत ही गहरा पड़ा है। पीछे मसीह-द्वारा पर्वत-शिखर पर दिए गए उपदेश में भी उन्होंने इन्हीं विचारों को पाया। गांधीजी लिखते हैं-"वास्तव में बाइबिल के नए सन्देश ने ही अहिंसात्मक सत्याग्रह की नीति और शत्रु को प्रेम-द्वारा जीतने के सिद्धांत को मेरे मन में बैठाया है। जब मैंने बाइबिल में पढ़ा—बुराई का विरोध मत करो। एक एक गाल पर चाँटा खाकर दूसरा गाल आगे कर दो। अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले के लिये भी मङ्गल-कामना करो—तो मेरा मन प्रसन्नता और उत्साह से भर गया।"

वर्तमान लेखकों में, अहिंसात्मक सत्याग्रह के सम्बन्ध में सब से अधिक प्रभाव महात्माजी के विचारों पर टाल्सटाय के लेखों का

पड़ा है। डवल्यू डवल्यू पिपसर्जन लिखते हैं—"टालसटाय और उनके सिद्धांतों के लिये महात्मा गाँधी के हृदय मे अत्यन्त आदर का भाव है। अहिंसात्मक सत्याग्रह के सम्बन्ध मे गाधीजी ने अपने धार्मिक ग्रंथों की अपेक्षा इस पश्चिमीय दार्शनिक से ही अधिक विचार ग्रहण किए हैं। वैसे तो गाधीजी बहुत छोटी अवस्था मे ही त्याग और अहिंसा के सिद्धांतो का अध्ययन करने लगे थे, परन्तु क्रियात्मक क्षेत्र मे टालसटाय के विचारों के अध्ययन के पश्चात ही उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा का प्रयोग आरम्भ किया। रोम्या रोलाँ ने भी इस विषय में गाधीजी और टालसटाय के विचारों का साम्य दिखाया है। वे लिखते हैं—'गाधीजी के शरीर में मसीह की आत्मा हिन्दू-धर्म के रूप मे प्रकट हुई है। गांधीजी के रूप में सचमुच टालसटाय अधिक शान्त और कोमल भाव लेकर प्रकट हुए हैं। गाधीजी मसीह के सिद्धान्तों के प्राकृतिक रूप हैं। टालसटाय के सिद्धान्त मसीह के अनुयायी थे। परन्तु गान्धीजी की प्रकृति मसीह का अनुकरण कर रही है।'

टालसटाय की मृत्यु के पश्चात् उनके कागजों में गांधीजी के साथ कुछ पत्र-व्यवहार मिला है। इस पत्र-व्यवहार से इन दोनों महापुरुषों का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। प्रसिद्ध लेखक पाल वर्कीव की कृपा से यह लेख हाल ही मे प्रकाशित हुआ है।

गाधीजी ने पहले-पहल सन् १९०९ मे टालसटाय को पत्र लिखा था। इस पत्र के उत्तर मे टालसटाय लिखते हैं—

"तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई। भगवान हमारे ट्रान्सवाल के भाइयों और सहयोगियों की सहायता करें। ठीक इसी तरह का झगड़ा हमारे यहाँ भी चल रहा है। कोमलता, सहिष्णुता और प्रेम से हम निष्ठुरता, अहङ्कार और अन्याय का सामना कर रहे हैं। यह झगड़ा यहाँ फौज मे भर्ती होना अस्वीकार

करने के कारण है। फौज मे भर्ती होने का विरोध दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। भाई, मै तुम्हारा उत्साह बढ़ाना चाहता हूँ। तुमसे ही पत्र-व्यवहार कर, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।"

१६१० मे गाँधीजी ने टॉलसटॉय को एक पत्र और लिखा। इस पत्र के साथ उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत मे स्वराज्य' भी टालसटाय को भेजी। इस पत्र मे गाँधीजी ने अपने-आपको इस उपन्यास सम्राट का विनीत अनुयायी लिखा है, और पुस्तक के विषय में टालसटाय को अपनी सम्मति लिखने को कहा है।

टालसटाय ने इस पत्र का उत्तर दो पत्रों मे दिया है—एक पत्र तो बिल्कुल संक्षिप्त है, परन्तु दूसरा लम्बा है। इस पत्र मे टालसटाय ही लिखते हैं—

"ज्यों-ज्यों आयु के दिन बढ़ते जाते हैं, मृत्यु मुझे समीप आती जान पड़ती है। मैं चाहता हूँ, अपने अनुभवों में-से काम की बातें मनुष्य-समाज के सम्मुख रख दूँ। अहिंसात्मक सत्याग्रह निस्स्वार्थ प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रेम मनुष्य-जीवन की सबसे अधिक प्रभावशाली शक्ति है। कोई भी मनुष्य प्रेम की शक्ति से रहित नहीं। सभी लोग बचपन मे इसकी शक्ति को अनुभव करते हैं। परन्तु संसार के अनुभव हमारे हृदय और आत्मा को कठोर तथा भाव-शून्य बना देते हैं। भगवान मसीह ने प्रेम की शक्ति को पूर्ण रूप से अनुभव किया था। वे स्पष्ट कह गए हैं—'देवताओं की शक्ति प्रेम ही है।' परन्तु वासनाओं से मुक्त सांसारिक मनुष्य इस शक्ति का अनुचित प्रयोग करने लगते है।......प्रेम के साथ-साथ शक्ति-प्रयोग का साम्य नहीं हो सकता। शक्ति के प्रयोग से प्रेम का नाश हो जाता है। सम्पूर्ण ईसाई साम्राज्य इसी स्पष्ट और स्वतः व्यक्त नियम को न समझ, इनकी उपेक्षा करने के कारण भर-भराकर गिर पड़ा!

"प्रेम मे अधिकार और विरोध का भाव आ जाने से वह व्यर्थ हो जाता है। वहाँ, जीवन में प्रेम का निर्देश नहीं रह जाता। जीवन में प्रेम न रहने से वह प्रायः भाव-शून्य हो जाता है। फिर उसमे अधिकार, विरोध और ज़बर्दस्ती का भाव ही रह जाता है। बलवान् की निरंकुश इच्छा ही सब कुछ हो जाती है। ज्यों-ज्यों ईसाई-साम्राज्य का विस्तार होता गया, प्रेम और अधिकार के क्षेत्र का भेद भी बढ़ता गया। इस समय या तो हम मसीह-द्वारा उपदिष्ठ प्रेम के आध्यात्मिक वर्ग की उपेक्षा कर, पाशविक बल के सम्मुख सिर झुका दें, अथवा वर्तमान शासन-द्वारा नियुक्त करो, अदालतों, पुलिस और सेना-आदि, जितनी संस्थाएँ शक्तिप्रयोग की प्रतिनिधि हैं, उन सबका विरोध करें।"

इमानिया पोलिका के संत की पवित्र आत्मा ने इन विचारों को केवल सिद्धात का ही रूप दिया था, परंतु गाँधीजी इन्हें क्रिया-त्मक क्षेत्र मे ले आए हैं। राजनैतिक आंदोलन की सरगर्मी मे महात्माजी ने विविध स्थानो पर विद्यार्थियो, सर्वसाधारण जनता, तथा स्त्री-सभाओं मे जो व्याख्यान दिए हैं, उनमें सदा उन्होने प्रेम, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत पर जोर दिया है। संसार के इतिहास में किसी भी राजनीतिज्ञ ने आध्यात्मिकता को इतना महत्त्व नहीं दिया, जितना गाँधीजी ने दिया है।

दासता की यंत्रणा से व्याकुल हो, भारत की प्रजा—अत्या-चारी शासन के विरुद्ध क्रांति की भीषण ज्वाला के रूप मे उठने के लिये छटपटा रही थी। अपनी सदियो की दासता और अपमान का बदला लेने के लिये उनका रक्त खौल रहा था। परंतु आंदोलन के नेता ने उन्हे अत्याचारी शासन के प्रति प्रेम और सौहार्द का उपदेश देकर, रक्तपात से देश को बचा लिया।

गाँधीजी कहते हैं—"हम अपने हृदय के प्रेम से बृटिश शासन

के क्रोध और द्वेष का शमन कर लेंगे। हम उनकी घृणा के उत्तर में उनसे प्रेम करेंगे, और भगवान् से उन्हे सुबुद्धि देने की प्रार्थना करेंगे। यदि आवश्यकता हो, तो हम शत्रु के रक्त को न बहाकर स्वयं अपना रक्त बहाने को तैयार हैं। अपने विचार और सिद्धांतों के लिये जो भी कष्ट और अन्याय हमें सहना पडेगा—हम प्रसन्नता से सह लेंगे। बदला लेने का ध्यान कभी हमारे मन में न आना चाहिए।"

महात्माजी कहते हैं—"भारत केवल प्रेम के मार्ग से ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। घृणा के बदले प्रेम करके, शत्रु का रक्त बहाने के बदले अपने प्राण देकर ही भारत को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो सकेगी।" वे लिखते हैं—"जिस दिन हम अपने क्रोध और द्वेष का दमन कर, अपने-आपको वश में कर सकेंगे, हमें अपने उद्देश्य में स्वयं सफलता प्राप्त हो जायगी। हमारी सफलता का रहस्य इसी बात में है, कि हम प्रत्येक अङ्गरेज और सरकारी अफ़सर के शरीर की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझें। मेरा यह विश्वास है, जिस दिन भारत के कोने-कोने में अकेला फिरता हुआ प्रत्येक अङ्गरेज अत्याचार और अन्याय करने पर भी अपने-आपको इतना सुरक्षित और निरापद समझेगा, जैसे मानों वह मशीनगनों की ओट में बैठा हो, जिस दिन हम अङ्गरेजों को यह विश्वास दिला देंगे, कि हम उन्हे अपना ही अङ्ग समझते हैं—उसी दिन भारत से अन्याय और अत्याचार का अन्त हो जायगा। जिस दिन सरकार को यह विश्वास हो जायगा कि प्रजा अत्याचार और आतङ्क से नहीं घबराती—उस दिन इन उपायों को व्यर्थ समझकर उन्हें छोड़ देगी।"

गाँधीजी के नेतृत्व में भारत का यह आन्दोलन मनुष्य-समाज के इतिहास में सर्वथा अद्वितीय है। भारत की इस क्रान्ति का आदर्श

है, शत्रु से प्रेम। इससे पूर्व भी अनेक सन्त और महापुरुष अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत का समर्थन कर गए हैं। बुराई को नेकी से जीतने का उपदेश वे लोग पहले भी दे गए हैं। परन्तु गांधीजी और इन लोगों में बहुत अन्तर है। वे लोग अहिंसा और प्रेम को वैयक्तिक साधना का मार्ग बता गए हैं। सबसे पहले गांधीजी ने ही इस आध्यात्मिक शस्त्र को राजनीति के व्यावहारिक क्षेत्र में लाने का साहस किया है।

गांधीजी को इस शस्त्र पर पूर्ण विश्वास है। उनका कहना है, यह अमोघ शस्त्र केवल गिने-चुने आप्त पुरुषों के प्रयोग के लिये ही है। वे संसार के कल्याण के लिये व्यापक रूप में इसका व्यवहार करना चाहते हैं। जिस प्रकार वन्य जन्तुओं को प्रकृति में हिंसा स्वाभाविक है, उसी प्रकार गांधीजी कहते हैं, हम लोगों के स्वभाव में भी अहिंसा स्वाभाविक ही होनी चाहिए। असभ्य और पशु की आत्मा सुषुप्तावस्था में रहती है, इसलिये बल-प्रयोग के अतिरिक्त उन लोगों के पास दूसरा चारा ही नहीं। मनुष्य का महत्व इसी बात में है कि वह शारीरिक शक्ति की उपेक्षा कर, आध्यात्मिक बल को ही व्यवहार करे। गांधीजी अपने दक्षिण-अफ्रीका के अनुभव के आधार पर भारत को अहिंसात्मक सत्याग्रह के उपाय से राष्ट्रीय आन्दोलन में उसके ध्येय तक पहुँचा देना चाहते हैं।

गांधीजी का विचार है—"बालकों को बहुत कम अवस्था में लिखना-पढ़ना सीखने से पूर्व ही अहिंसा के सिद्धान्त की शिक्षा देना आरम्भ कर देना चाहिए। इसी अवस्था में उनकी आत्मा में अध्यात्म जीवन के मूल तत्त्वों को बैठा देना ही शिक्षा का सबसे प्रथम उद्देश्य होना चाहिए। आरम्भ से ही बालकों की मनोवृत्ति इस प्रकार डालनी चाहिए, कि वे पाशविक बल को आत्म-त्याग और सहिष्णुता से विजय करने का यत्न करें।"

गांधीजी प्राचीन हिंदू आदर्श के अनुसार सम्पूर्ण राष्ट्र में ब्राह्मण

धर्म का प्रचार कर देना चाहते हैं। एक अवसर पर प्रो० विधुशेखर ने रवींद्र के सभापतित्व मे एक सभा में व्याख्यान देते हुए कहा था—"इस समय तक सब युद्धो और राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा मे क्षात्रिय, वैश्य तथा शूद्र धर्म ने ही भाग लिया है। परंतु भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन मे गाधीजी ब्राह्मण धर्म का प्रयोग करना चाहते हैं। इस राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार मनुष्य समाज के साधारण नियम, प्रतिकार और प्रतिहिंसा पर नहीं है। इस आन्दोलन की आत्मा आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व भगवान् गौतमबुद्ध का उपदेश-'क्रोध को प्रेम से, बुराई को नेकी से, तृष्णा को उदारता से और असत्य को सत्य से विजय करना है, राजनैतिक संग्राम में इस प्राचीन आध्यात्मिक आदर्श का प्रचार कर, गाँधीजी देश को ब्राह्मणत्व की ओर ले जाना चाहते हैं। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध इस युद्ध को, गाँधीजी प्रेम और त्याग के आध्यात्मिक शस्त्रों से ही लड़ना चाहते हैं।"

इस अद्भुत राजनैतिक नेता के लेखों मे हम स्थान-स्थान पर प्रेम की पुकार सुन पाते हैं। गाधीजी लिखते हैं—"अपने शत्रु को जबर्दस्ती पवित्रता और त्याग के मार्ग पर लाने का यत्न करना अन्याय है। उसे हमारे अपने विचारों को मानने के लिए विवश करना और भी बड़ा पाप है। जिस समय तक शारीरिक बल के प्रयोग से हमारा विश्वास न हटेगा, हमे अपने उद्देश्य में कभी भी सफलता प्राप्त न होगी। शत्रु को अपने विचारों के प्रति आकर्शित करने का एकमात्र उपाय सहानुभूति और दया ही है। भारत ससार को अहिंसा और सत्याग्रह का उपदेश देना चाहता है। परंतु संसार के लिये उसका यह संदेश तभी मान्य होगा, जब कि वह अपने शासकों को प्रेम से विजय कर पाएगा।"

गांधीजी कहते हैं—"अहिंसा और त्याग को निर्बल मानना

भूल है। मैं अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ, अहिंसा और त्याग के लिये मनुष्य में पाशविक बल की अपेक्षा कहीं अधिक साहस, शक्ति और सहिष्णुता की आवश्यकता है। इसीलिये अहिंसा और त्याग का प्रभाव भी पशु बल की अपेक्षा कहीं अधिक है। मनुष्य में सामर्थ होते हुए भी बदला न लेकर क्षमा कर देने के लिये हृदय की विशालता की आवश्यकता है। क्षमा करना सबल के लिये ही सम्भव है। निर्बल क्या क्षमा करेगा? यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि शक्ति का स्रोत शारीरिक बल नहीं, बल्कि आत्मा और मन है। हम पैंतीस करोड़ भारतवासी यदि एक लाख अंग्रेजों को इस देश में निर्भय होकर रहने का अवसर देंगे, तो यह हमारी निर्बलता का नहीं, सबलता और क्षमाशीलता का ही परिचय होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है, कि भारत की मुक्ति क्रोध में नहीं, बल्कि क्षमा में है। संसार का इतिहास हमें बतलाता है, अनेक देशों ने हिंसा के बल क्रान्ति करके अपने अधिकार को पाया है। परन्तु भारत के लिये वह सिद्धान्त कभी लागू न होगा। भारत की संस्कृति संसार से निराली है। इसी सभ्यता के मूल में धार्मिक भाव तथा आध्यात्मिकता की पुट है। भारत को शस्त्रास्त्र की आवश्यकता नहीं। वह संसार को अपनी आध्यात्मिकता से पहले भी जीत चुका है और अब फिर वह इसी शस्त्र से विजय प्राप्त करेगा।"

गांधीजी भारत के लिये निःशस्त्र होने के कारण अहिंसा और सत्याग्रह का समर्थन नहीं कर रहे हैं, इसके द्वारा वे भारत की सुषुप्त आत्म-शक्ति को जगाना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि भारत की आध्यात्मिक शक्ति संसार-भर के पाशविक बल का सामना कर सकती है। उन्होंने अनेक बार स्पष्ट कर दिया है—यदि भारतवर्ष हिंसा और पशु बल का प्रयोग करेगा—तो वे राजनैतिक

आन्दोलन से अपना सम्बन्ध तोड़ लेंगे। वे लिखते हैं—"संभव है, भारत तलवार के जोर से स्वाधीनता प्राप्त कर ले। परन्तु उस अवस्था में, मेरे हृदय में भारत के प्रति श्रद्धा न रहेगी। मैं भारत का हूँ, और उसके चरणों में मेरा यह शरीर अर्पित है। परंतु जिस दिन भारत अपनी मुट्ठी में तलवार थाम लेगा, मुझे अपने लिये जीवन का नया मार्ग ढूँढ़ना पड़ेगा। मेरा धार्मिक विश्वास भौतिक सीमाओं से परिमित नहीं है। मैं भारत की सेवा केवल अहिंसा-धर्म द्वारा ही कर सकता हूँ। इस अहिंसा-धर्म में ही मुझे हिंदुत्व के प्राण और उसका जीवन दिखाई पड़ता है।"

१५

महात्माजी के सिद्धान्तों की एक विशेषता है, अहिंसावाद की मौलिकता। उन्होंने अनेक अवसरों पर इस बात को दोहराया है, कि अहिंसा का अनुयायी होने का अर्थ संसार और कर्म-क्षेत्र से उदासीन हो जाना नहीं है। वे अत्याचार के विरोध के लिये इसे प्रबल शस्त्र समझते हैं। सत्याग्रह का अर्थ, अत्याचार और पाप के प्रति हाथ न उठाकर केवल उदासीन हो जाना ही नहीं, इसका अर्थ है, सत्य की शक्ति से अन्याय और अत्याचार को सहते हुए न्याय के पथ पर आगे बढ़ना। भौतिक बल का प्रयोग गाँधीजी के विचार से सभी अवस्थाओं में निषिद्ध है। अहिंसा व्रत धारण कर, अत्याचार को सह लेना, उस अवस्था के लिये है, जब निर्बल को सबल के अत्याचार का सामना करने की आवश्यकता पड़े। गाँधीजी के विचार के अनुसार निर्बल को किसी भी प्रकार की भौतिक शक्ति द्वारा अत्याचारी का विरोध न कर, उसके अन्याय का विरोध असहयोग से करना चाहिए। सत्याग्रह का शस्त्र बलवान् लोगों के लिये है। अत्याचारी के अन्यान्य को सहते हुए अपने अधिकार को प्राप्त करने की चेष्टा करना 'सत्याग्रह' है। किसी भी अवस्था में,

किसी भी उद्देश्य से, बल और शक्ति के प्रयोग की महात्माजी आज्ञा नहीं देते।

महात्माजी दीन-दुखियों के रक्षक हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अन्याय के विरुद्ध लड़ने में ही व्यतीत कर दिया है। परन्तु शारीरिक बल का उन्होंने इस महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भी कभी प्रयोग नहीं किया। जर्मन-लेखक होलित्शेर अपने एक लेख में गाँधीजी के साथ अपने एक वार्तालाप का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—'मैंने महात्मा गाँधी के सम्मुख पूँजीवाद के दोषों को उपस्थित कर, बल-पूर्वक पूँजीवाद का मूलोच्छेद करने की आवश्यकता बताई। गाधीजी ने विरोध करते हुए कहा—मैं तो एक साँप को मारना भी उचित नहीं समझता। मैं साँप से खेलूँगा नहीं, उसे छुऊँगा भी नहीं, उसके हृदय मे अपने प्रति विश्वास जमाने का प्रयत्न करूँगा। उसे यह विश्वास दिला दूँगा कि उसे मुझसे कष्ट नहीं पहुँच सकता। फिर वह भला क्यों काटेगा? इसी प्रकार मैं पूँजीवाद का नाश तो न कर सकूँगा, पर उसके रूप को बदलकर, उसके प्रभाव को कम करने का प्रयत्न करूँगा। मैं न तो उसका विरोध कर सकता हूँ, और न उसका नाश ही।"

इन विचारों के कारण यदि गांधीजी बोल्शेविज्म के तरीके का विरोध करें, तो उसमे आश्चर्य ही क्या है? प्रायः सभी लोगों का यह विश्वास है कि पूँजीवाद के पंजे से, निर्धनों और मजदूरों का उद्धार लाल क्रान्ति के बिना नहीं हो सकता। परन्तु गान्धीजी इन विचारों को स्वीकार नहीं करते। भारतीय बोल्शेविक मि० एम० एन० के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—'मैं मनुष्य समाज के नाश के पक्ष में नहीं, बल्कि उसमें परिवर्तन करने के पक्ष में हूँ। मैं आपके विचारों और युक्तियों की प्रशंसा करने पर भी आपके बल-प्रयोग का समर्थन नहीं कर सकता। बल का प्रयोग चाहे आप

कितने ही पवित्र काम के लिये करें, मैं उससे सहमत नहीं हो सकता। बोल्शेविज़्म का अर्थ है, निर्दयता और आत्म विस्मृति। पर सत्याग्रह का अर्थ है, त्याग और आत्म-संयम।'

गाँधीजी कहते हैं—'सत्य का पोषण हम शत्रु को दबाकर नहीं कर सकते। इसका उपाय है, स्वेच्छापूर्वक त्याग और सहिष्णुता। हमारी सफलता का परिणाम हमारे त्याग और कष्ट-सहन पर निर्भर है। इसीलिये मसीह ने कष्ट और त्याग से संसार के दुःख का दूर करने का प्रयत्न किया था। भारत की दासता का उपाय अत्याचारी विदेशी शासन को चोट पहुँचाकर, उनके अत्याचार का बदला देकर नहीं हो सकता, उसका उपाय भारत के स्वयं अपनी इच्छा से कष्ट सहने और तप द्वारा ही हो सकता है।" गांधीजी कहते हैं—'सत्याग्रही को सदा स्वेच्छापूर्वक दुःख, कष्ट और मृत्यु तक का सामना करने के लिये तत्पर रहना चाहिए। सत्याग्रही का यह कष्ट-सहन, तप और त्याग एक आध्यात्मिक शक्ति का जन्म देता है, जिससे अत्याचार का नाश होकर न्याय और शान्ति की स्थापना होती है।'

गाँधीजी कहते हैं—'कोई भी देश तप की अग्नि में तपकर शुद्ध हुए बिना, उन्नति के मार्ग पर आरूढ़ नहीं हो सकता। भारत इस व्यापक नियम का उल्लंघन करके यदि बढ़ना चाहेगा, तो उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।' महात्माजी अभिमान-पूर्वक यह कहते हैं, कि मैं संसार में बलिदान की प्राचीन प्रथा का पुनरुत्थान कर रहा हूँ। सत्याग्रह के मार्ग मे कष्ट सहे बिना, उचित बलिदान किए बिना, हमे अपने उद्देश्य मे कभी सफलता प्राप्त न हो सकेगी।

जिस प्रकार महात्माजी का यह विश्वास है कि सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन केवल बली पुरुष कर सकते हैं, उसी प्रकार उनकी धारणा है कि शारीरिक शक्ति का प्रयोग कायरता का प्रमाण

है। प्राय भय से व्याकुल होकर ही मनुष्य दूसरे पर आक्रमण करता है। इसलिये दूसरे को चोट न पहुँचाकर स्वयं कष्ट सह लेना भय को जीत लेना है। महात्माजी कहते हैं—'कोई भी सत्याग्रही कायर नहीं हो सकता। साहस और वीरता के अभाव में सत्याग्रह हो ही नहीं हो सकता। सत्याग्रही यद्यपि अत्याचारी पर आक्रमण नहीं करता, उसे कष्ट नहीं पहुँचाता, परन्तु वह किसी के अत्याचार के सम्मुख सिर कभी न झुकाएगा। वह अपनी इच्छा से कष्ट-सहन कर, आत्मिक-शक्ति से अत्याचार का विरोध करता है। गांधीजी कहते हैं—'अत्याचार का अन्त केवल आत्मिक बल और सत्याग्रह से ही हो सकता है। बल-प्रयोग से सदा अत्याचार और अन्याय के लिये नवीन क्षेत्र तैयार होता है बल-प्रयोग से हम किसी के हृदय मे परिवर्तन नहीं ला सकते। हृदय को बदलने का उपाय केवल आत्मिक बल है।'

गांधीजी अपने विचारों के लिये अत्याचार सहने को सदा प्रसन्नतापूर्वक प्रस्तुत रहते है। अपनी गिरफ़्तारी का हुक्म सुनकर उनके माथे पर चिन्ता का चिन्ह तक न देखाई पड़ा। उन्होंने अपने अनुयाइयों को भी सदा गिरफ्तार होने के लिये तैयार रहने का आदेश दिया है। सरकार से आज्ञा पाने पर वे लोग स्वयं अपने आपको अदालत मे पेश कर देते हैं, वे लोग न किसी क़िस्म की सफाई देते हैं और न वकील ही पेश करते हैं। यदि जुर्माना न दे सकने पर जेल का हुक्म हो, तो वे लोग जेल जाना भी स्वीकार करेंगे। यदि जुर्माने की ही सज़ा हो, तो वे देने से इन्कार कर देते हैं। अपने सहयोगियों के जेल जाने पर या सजा पाने पर सत्याग्रही लोग किसी प्रकार की शिकायत या शोक नहीं करते। उनका कहना है, हम जान-बूझकर नियम को भंग करते हैं, तो फिर सजा पाने पर शिकायत कैसी? जेल जाने पर वे जेल के कठोर नियमों

का पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं। सत्याग्रही किसी बात को छिपा कर नहीं रखते, न वे दण्ड से बचने का प्रयत्न ही करते हैं। दण्ड सहने और जेल जाने को वे आत्मिक शुद्धि का उपाय समझते हैं।

जेल जाने पर गाँधीजी ने इस अवसर को अपनी आत्मिक शक्ति की जाँच का मौका समझा। वे लिखते हैं—"जेल के वार्डर जो शारीरिक कष्ट मुझे देते, मैं उसे शान्तिपूर्वक सह लेता। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे मन की शांति भंग न हुई और वार्डर ने स्वयं ही मेरे पैरों से बेड़ियाँ उतार दीं। यदि मैं उसका विरोध करता, तो इससे मेरा मन क्षुब्ध होता और मैं अपना ध्यान संयत न रख सकता। मेरी सहिष्णुता ने जेल के कष्टों की मात्रा मेरे लिये घटा दी। शारीरिक कष्ट-सहन का सबसे बड़ा लाभ मुझे यह हुआ कि मैंने अपनी आत्मिक शक्ति मे वृद्धि अनुभव की। मेरा विश्वास है, जो लोग न्याय और सत्य के लिये कष्ट-सहन करते हैं, भगवान् उनपर अपनी कृपा बनाए रखते हैं। मसीह, सुकरात और डेनियल आध्यात्मिक शक्ति के सत्याग्रह के उज्वल उदाहरण हैं। इन महापुरुषों ने सत्य के लिये अपने शरीरों का बलिदान करने में संकोच नहीं किया। भारत के लिये अहिंसा और सत्याग्रह का सिद्धांत नई वस्तु नहीं है। यूरोप को इसका परिचय होने से पूर्व भी भारतीय ऋषि इसका व्यवहार करते थे।"

महात्माजी सत्याग्रहियों के लिये थोरियो के उदाहरण को आदर्श मानते हैं। गाँधीजी ने थोरियो के अपने जेल-जीवन के वर्णन से एक उद्धरण किया है। थोरियो लिखता है—"मुझे उन लोगों ने पत्थर और चूने की मोटी-मोटी दीवारों के बीच में कैद कर दिया। मुझे उनके इस व्यवहार पर हँसी आती थी। इतने यत्न और परिश्रम से तैयार की गई उनकी मोटी-मोटी दीवारों और

तालों को लाँघकर मेरा मन और मेरी कल्पना, स्वच्छन्दतापूर्वक उनके साथ ही, किसी प्रतिबन्ध को न मानकर बाहर चली जाती थी। जेलर मेरे शरीर को कष्ट देकर अपने क्रोध को संतुष्ट करने का प्रयत्न करता था। मुझे उसका व्यवहार ठीक वैसा ही जंचता, जैसे मानो छोटे-छोटे बालक किसी मनुष्य का कुछ न बिगाड़ सकने पर क्रोध में उसके कुत्ते को मारने का यत्न करें।"

गाँधीजी सत्याग्रही के लिये स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन स्वीकार करने का अर्थ केवल जेल जाना ही नहीं समझते। वे सत्याग्रही के लिये मृत्यु का सामना करने के लिये तैयार होना भी आवश्यक समझते हैं। गाँधीजी कहते हैं—"भय को मन से दूर किए बिना सत्याग्रह के मार्ग पर चलना असम्भव है।" इसीलिये गाँधीजी भारत के लिये स्वतन्त्रता-प्राप्ति के महान उद्देश्य की तुलना, मृत्यु से निर्भय होकर सर्वथा मुक्ति प्राप्त करने से किया करते हैं। वे कहते हैं—"यदि मनुष्य मृत्यु से निर्भय न हुआ, तो उसके लिये राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या है? जब तक हमारे मन में मृत्यु का भय वर्तमान है, हम अपने-आपको पूर्णतः नहीं समझ सकते।" महात्माजी का यह निर्भीकता का सिद्धान्त भारत के लिये एक विशेष महत्त्व रखता है। भारतवासी, कुछ-एक जातियों को छोड़कर, प्रायः अत्यन्त भीरु होते हैं। मृत्यु का भय सदा उनके सिर पर सवार रहता है। इसलिये गांधीजी जनता के मन से भय का भाव तथा कायरता दूर करने पर विशेष बल देते हैं। उनका विश्वास है, देश से इस कायरता और निरुत्साह को निकाले बिना स्वतंत्रता की प्राप्ति सम्भव नहीं।

१६

गाँधीजी की सम्मति में सत्याग्रह का सिद्धांत न-केवल वैयक्तिक जीवन से ही सम्बन्ध है, वल्कि व्यक्तिगत तथा राजकीय और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भी यह सिद्धांत पूर्ण रूप से लागू होता है। महात्मा गाँधी कहते हैं—"जनता को अनुचित कानून के रूप में राज्य की गलतियाँ और अन्यान्य के दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इन अन्यायपूर्ण नियमों के हटाने का उपाय है, इन नियमों को भंग करना। हमें न-केवल इन नियमों को भंग करना होगा, वल्कि नियम को भंग करने का दण्ड भी भुगतने के लिये तैयार रहना होगा।"

राज्य के अन्याय और अत्याचार का विरोध का उपाय गाँधोजी 'सविनय क़ानून-भंग' बताते हैं। भविष्य में सरकार के दमन का उपाय वे इसी ढंग से करना चाहते हैं। 'सविनय कानून-भंग का शब्द महात्मा गाँधी ने थोरियो से लिया है। थोरियो ने इस शब्द का आविष्कार कर-सम्बंधी कुछ क़ानूनों को भंग करने के लिये किया था, परंतु गाँधीजी 'सविनय-क़ानून-भंग' के क्षेत्र में उन सभी नियमों का समावेश करते हैं, जो उन्हें अनुचित और अन्याय

पूर्ण जान पड़ते हैं। पर हाँ, 'सविनय-क़ानून-भंग' के लिये गाँधीजी बल-प्रयोग की आज्ञा कभी नहीं देते। जिस किसी नियम को जनता अनुचित और अन्याय-पूर्ण समझती हो, उस नियम को विनयपूर्वक भंग करने का जनता को पूर्ण अधिकार है। शासन अन्यायपूर्ण और अनुचित आज्ञा देकर अपने अधिकार को खो बैठता है। जो व्यक्ति शासन के नियमों को अनुचित समझकर उन्हें भंग करना चाहता है, उसे इस नियम-भंग के परिणाम-स्वरूप दण्ड भुगतने के लिये भी तैयार रहना चाहिए। अनुचित और अन्याय-पूर्ण नियम के प्रति विरोध का प्रभाव उसी अवस्था में पड़ सकता है, जब सत्याग्रही शासन के अन्य नियमों का पालन पूर्णतः कर रहा हो। नियम के भंग करने का अधिकार उसी व्यक्ति को है, जो विनय का पालन समय पर उचित ढंग से करके दिखा सकता है। गाँधीजी कहते हैं—"राज्य में व्यक्ति को वैयक्तिक स्वतंत्रता का मूल्य राज्य का अनुशासन मानकर देना पड़ता है। यदि इस वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिये हमें राज्य के अनुचित अनुशासन को मानना पड़ता है, तो यह हमारी गिरावट और कायरता का प्रभाव है।"

इस प्रकार गाँधीजी का सविनय-क़ानून-भङ्ग का सिद्धांत शासन के विरुद्ध एक शान्त क्रान्ति है, जिसमे रक्त-पात का कोई चिन्ह नहीं। यह निःशस्त्र जनता की बग़ावत है और जनता का मूक विरोध है।

गाँधीजी ने सविनय-कानून-भङ्ग के शस्त्र का प्रयोग सबसे प्रथम दक्षिण-अफ्रीका मे किया। दक्षिण-अफ्रीका मे अन्याय और दमन का विरोध वे बहुत सफलतापूर्वक कर सके थे। दक्षिण-अफ्रीका निवासी भारतवासियों को सभी वैध उपायों से अत्याचार और अन्याय का उपाय करने पर भी जब सफलता न हुई, तो उन्होंने

गाँधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह और सविनय-क़ानून-भङ्ग का आश्रय लिया।

सन् १९०६ में दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने क़ानून पास किया। इस क़ानून के अनुसार वहां के प्रवासी भारतवासियों की स्थिति जरायमपेशा लोगों की-सी हो गई। वे पुलिस की आज्ञा लिये बिना और अँगूठा लगाए बिना एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते थे। इस क़ानून को भारतवासियों ने अपना अपमान समझा। अनेक सभाएँ करने के पश्चात् उन्होंने गाँधीजी के प्रस्ताव पर नवीन क़ानून के विरुद्ध सविनय कानून-भङ्ग करने का निश्चय कर लिया। गाँधीजी के सत्याग्रह के सिद्धान्त का क्रियात्मक इतिहास इसी स्थान से आरम्भ होता है।

प्रायः सभी भारतवासियों ने एक-एक करके पुलिस के रजिस्टर में अपने नाम लिखवाने व अँगूठे का चिन्ह देने से इन्कार कर दिया। क़ानून-भङ्ग के लिये इन लोगों ने कठोर दण्ड सहना स्वीकार किया। ट्रान्सवाल के सभी जेलख़ाने क़ानून भङ्ग करनेवाले भारतवासियों से भर गए। गांधीजी स्वयं दो मास के लिये जेल भेज दिए गए। यह अवस्था देख, ट्रान्सवाल के अधिकारियों ने गाँधीजी के साथ सुलह की बातचीत आरंभ की। अभी मामला पूर्णतया शांत भी न हुआ था कि भारतवासियों का पुनः निरादर किया गया। इसके विरोध में पुनः सत्याग्रह आरंभ हो गया। फिर हज़ारों व्यक्ति जेलख़ाने भेजे गए। गांधीजी स्वयं भी दूसरी दफ़ा जेल गए।

यह झगड़ा कई वर्ष तक चलता रहा। सन् १९१२ ई० में यह आंदोलन चरम सीमा तक पहुँच गया। दक्षिण-अफ्रीका की अदालत के निश्चय के अनुसार दक्षिण-अफ्रीका में भारतीय ढङ्ग से सभी विवाह नाजायज़ क़रार दिए गए। इसी समय एक दूसरे कानून की रू से भारतवासियों पर प्रति व्यक्ति तीन पोंड सालाना

के हिसाब से कर भी लगा दिया गया। गांधीजी ने इसके विरोध में सब प्रकार के काम को पूर्णतया बन्द कर दिया। भारतीय स्त्रियों ने खानों मे काम करनेवाले कुलियों के पास जाकर इस अत्याचारी कानून के विरोध मे काम की हड़ताल कर देने के लिये कहा। इस कानून के रद्द हुए बिना भारतवासियों ने किसी भी प्रकार का काम करने से इन्कार कर दिया। इस हड़ताल से तङ्ग आकर गवर्नमेण्ट को एक कॉन्फ्रेन्स इस समस्या पर विचार के लिये बुलानी पड़ी। गांधीजी इस कॉन्फ्रेंस मे उपस्थित थे। इस कॉन्फ्रेंस में सरकार ने तीन पाउण्ड का कर रद्द करना स्वीकार कर लिया।

कॉन्फ्रेंस की समाप्ति पर महात्माजी ने शेष कानूनों के विरोध में ट्रान्सवाल के सब भारतवासियों का एक जुलूस ट्रान्सवाल से जोहान्सबर्ग तक चलने के लिये तैयार किया। इस जुलूस को देखकर सरकार बहुत घबराई। उन्होने जुलूस को रोकने के लिये फौज तैनात कर दी। परन्तु जुलूस न रुका। जुलूस के लोगों का यह निश्चय था कि या तो वे सब लोग बन्दी बनाकर जेल भेज दिए जायँ अथवा वे जोहान्सबर्ग पहुँचकर चैन लेंगे।

सरकार ने समझा, गाँधीजी के गिरफ्तार होने से उनकी शान्त सेना तितर-बितर हो जायगी। उन्होंने गाधीजी को गिरफ़्तार कर लिया। परन्तु सत्याग्रहियों की वह सेना अपने मार्ग पर डटी रही। आखिर गाँधीजी को छोड़ दिया गया। गाँधीजी छूटते ही फिर जुलूस में सम्मिलित हो गए, और जुलूस आगे बढ़ने लगा। सरकार ने सब लोगों को गिरफ़्तार कर, रेल से उन्हें ट्रांसवाल पहुँचा दिया।

गाँधीजी का विरोध-प्रदर्शन का यह विचित्र उपाय व्यर्थ न गया। गाँधीजी को एक बार फिर गिरफ़्तार कर, जेल भेज दिया गया। वे प्रायः सवा वर्ष जेल में रहे। १९१३ मे सरकार के

भारतवासियों की सभी मांगे स्वीकार कर लेनी पड़ी। तीन पाउण्ड का प्रतिबन्ध-इत्यादि सब क़ानून हटाकर समता के व्यवहार का वचन भारतवासियों को दिया गया।

गांधीजी को अपने आन्दोलन में सफलता तो हुई ही, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने सत्याग्रह के सिद्धान्त की सार्थकता को भी प्रमाणित कर दिया। उनके विकट विरोधी जनरल स्मट्स को अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। सन् १९०६ मे स्मट्स ने भारतीयों के विरुद्ध पास किए गए कानून से राई-रत्ती-भर हटने से भी इन्कार कर दिया था, परन्तु १९१३ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इन अत्याचारी क़ानूनों को रद्द कर दिया।

१७

दूसरे अवसर पर सत्याग्रह के शस्त्र से अत्याचारी शासन का विरोध गाँधीजी ने अपने देश गुजरात प्रान्त में किया। गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम में सफल होकर विजयी नायक के रूप मे लौटे थे। उसी समय १६१८ में यूरोपीय महाभारत की समाप्ति के साथ ही लगानबन्दी के सम्बन्ध में झगड़ा खड़ा हो गया। लगान में अनुचित बढ़ती किए जाने के कारण खेड़ा मे गाँधीजी ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व महायुद्ध के समय तक गाँधीजी राज-भक्त प्रजा के रूप मेंसरकार को सब प्रकार से सहायता पहुँचाते रहे।

गाँधीजी ने लगान की अनुचित बढ़ती की शिकायत सरकार से कर, उसे दूर करने के लिये प्रार्थना की। सरकार अपने अन्याय पूर्ण निश्चय स हटने के लिये तैयार न हुई। गाँधीजी ने किसानों को कर अदा करने से रोक दिया, और उसके कारण जो भी दुख-दण्ड उन्हें दिया जाय, उसे शाँति-पूर्वक सहन लेने की सलाह दी। खेड़ा के किसानों ने दक्षिण-अफ्रीका के भारतवासियों की ही भांति सब कष्ट वीरता से सहे। सरकार-द्वारा दी गई यन्त्रणा तथा धमकियों

को सहकर भी प्रायः दो हज़ार अशिक्षित किसान लगान न देने की प्रतिज्ञा पर डटे रहे। आखिर सरकार को ही झुकना पड़ा और वह अनुचित लगान सरकार को रद्दकर देना पड़ा। इसके पश्चात् गाँधीजी ने वीरमगांव तथा अहमदाबाद में भी पीड़ित जनता के साथ—उसके आन्दोलन में योग दिया, और वहाँ भी सफलता प्राप्त की।

अहिंसात्मक सत्याग्रह-द्वारा अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन में सफलता प्राप्त कर लेने पर भी महात्माजी के ये सिद्धात संसार के सम्मुख राजनैतिक साधन के रूप मे अँग्रेज शासन के विरुद्ध भारत के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन से पूर्व नहीं आए। सरकार के सभी महकमों और विभागो से पूर्ण असहयोग कर गाधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह-द्वारा सरकार का विरोध आरम्भ किया। विदेशी शासन के अपरिमित सैन्य-बल का सामना करने के लिये गाँधीजी के पास केवल भारतीय जनता का आध्यात्मिक बल ही था।

आज से पूर्व भी भारत क इतिहास मे हमे राजनैतिक क्षेत्र में असहयोग का प्रयोग मिलता सही है, परन्तु गांधीजी से पहले असहयोग का यह राजनैतिक पहलू न तो इतना उग्र था, और न इसे राजनैतिक क्रांति का साधन ही माना गया था। कभी किसी दार्शनिक ने असहयोग का ऐसा विश्लेषण और विवेचन करने की आवश्यकता ही न समझी थी। गवर्नमेण्ट के प्रति असहयोग की यह नीति भारतवासियों की दृष्टि मे राजनैतिक साधन के अतिरिक्त अपना एक धार्मिक स्थान भी रखती हैं। बौद्ध-धर्म का प्रभाव भारत की मनोवृत्ति पर बहुत गहरा पड चुका है। भारतवासियों का सशस्त्र आन्दोलन और पाशविक बल के प्रयोग मे विश्वास है ही नहीं। जहां कहीं भी भारत में तलवार के प्रयाग के उदाहरण नज़र आते हैं—उनका कारण मुसलमानों की संस्कृति का प्रभाव है।

अहिंसात्मक सत्याग्रह का आदिम-विकास खोजने के लिये हमें इतिहास में एक सौ वर्ष पीछे तक जाना पड़ेगा। पहले-पहल १८१२ में सरकार की नीति से असंतुष्ट होकर जनता ने काशी में कुछ अन्यायपूर्ण करों के विरुद्ध सरकार से असहयोग की नीति का अवलम्बन किया था। कई दिन तक नगर में पूर्ण हड़ताल रही, और सब प्रकार के कारोबार बंद हो गए। सरकार को जनता की इच्छा के सामने झुकना पड़ा, और कर हटा दिए गए।

असहयोग का दूसरा उदाहरण मैसूर राज्य में मिलता है। १८३० में मैसूर के राजा के अन्याय से व्याकुल होकर प्रजा ने असहयोग के मार्ग का आश्रय लिया। एक अंग्रेज सम्वाददाता घटना का वर्णन करते हुए लिखता है—"प्रजा गाँवों को छोड़कर चल दी। खेत उजाड़ दिए गए। किसानों ने किसी भी प्रकार का कर देने से इन्कार कर दिया। प्रजा ने जंगलों में डेरा डाल दिया और वे अपना निर्वाह करने लगे। परंतु उन्होंने शासन के विरुद्ध हाथ न उठाया। पूर्ण असहयोग से बढ़कर उन्होंने कुछ न किया।"

१९०७ में भारत में, विशेषतः बङ्गाल में, सरकार के प्रति असहयोग की एक भारी लहर योगी अरविंद घोष के नेतृत्व में चली थी। किसी हद तक इस लहर को वर्तमान असहयोग-आन्दोलन का पूर्व-रूप भी कहा जा सकता है। ब्रिटिश सरकार अपनी कूट-नीति से बंगाल को दो भागों में बांट देना चाहती थी। भारतवासियों ने—विशेषतः बंगालियों ने, इस नीति का बहुत विरोध किया। अरविंद बाबू के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार और अंग्रेजी व्यापार से असहयोग कर दिया गया। कवि रवींद्र के देश-भक्ति-पूर्ण गीत इसी समय की रचना हैं। कवि ने अपनी ओजस्वी वाणी से अपने देशवासियों को मातृ-भक्ति के लिये सर्वस्व बलिदान करने के लिये पुकारा। अपने राष्ट्रीय कवि और राजनैतिक नेता की पुकार पर

सारा बंगाल उठ खड़ा हुआ। जनता ने विदेशी वस्त्र और सामान का बहिष्कार कर दिया। स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलाई जाने लगीं। अनेक बंगालियों ने राष्ट्रीय भाव से प्रेरित हो, सरकार की नौकरी तक छोड़ दी।

गाँधीजी की भाँति अरविन्द बाबू भी पश्चिमीय सभ्यता के विरोधी हैं। उन्होंने जनता को अंग्रेजी स्कूलों का बहिष्कार करने को कहा। जनता ने अपने राजनैतिक नेता की आज्ञा तो मानी, परन्तु नंगे शरीर और भूखे पेट के लोग क्या कर सकते थे? इस व्याधि का उपाय करने के लिये अरविंद बाबू ने भारत का आर्थिक शासन अंग्रेज़ों के हाथ से ले-लेने के लिये आन्दोलन आरम्भ किया। अंग्रेज़ी-सरकार को भला यह कब स्वीकृत हो सकता था? सरकार और प्रजा में राजनैतिक संग्राम छिड़ गया। अरविंद बाबू किसी प्रकार के बल-प्रयोग अथवा रक्त-पात के पक्ष में न थे। उन्होंने जनता को आध्यात्मिक उन्नति करने तथा सरकार के प्रति असहयोग की नीति का व्यवहार करने का उपदेश दिया। विदेशी शासन की सहायता के बिना ही उन्होंने अपने देश वासियों को आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये कहा। उनका मत था, यदि देश की शासक ब्रिटिश सरकार भारत के आर्थिक हित के लिये विदेशी माल पर कर लगाने के लिये तैयार नहीं, तो भारत-वासियों को स्वयं ही बहिष्कार-द्वारा विदेशी माल की आयत को बन्द करना चाहिए। जनता की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति कर, वे उसे आर्थिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रता के योग्य बनाने का प्रयत्न करने लगे। पर थोड़े समय बाद आंदोलनों का नेतृत्व अरविन्द बाबू के हाथों से निकल कर, हिंसात्मक क्रांति के उपासकों के हाथ में चला गया।

१८

गाँधीजी से पहिले भारत की स्वतंत्रता के आन्दोलन का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक के हाथों मे था। गाँधीजी की भाँति तिलक पर भारतीय जनता का अगाध विश्वास था। जनता ने उन्हें अपनी श्रद्धा के प्रमाण स्वरूप 'लोक-मान्य' की पदवी से सुशोभित किया था। वे भारत के बेताज-बादशाह कहे जाते थे। सबसे पहिले लोकमान्य तिलक ने ही १९०५ मे अखिल-भारतीय कांग्रेस में भारत के लिये स्वराज्य का प्रस्ताव उपस्थित किया था। अनेक कठिन आन्दोलनो के पश्चात् तिलक को ब्रिटिश सरकार के निरंकुश शासन में कुछ सुधार करने मे सफलता भी प्राप्त हुई। कांग्रेस में लोकमान्य के सम्मिलित होने के पश्चात् से ही कांग्रेस ने राष्ट्रीय रूप धारण किया, और देश मे शासन तथा स्वराज्य की माँग के आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ पाया। इस आन्दोलन के कारण ही ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को पहले मार्ले-मिण्टो-सुधार और बाद मे मॉंटेग्यू-चेम्सफार्ड के सुधार से भारत के अनेक रूप बदलकर शासन की आरम्भिक सुविधाएँ देनी पड़ीं।

लोकमान्य के प्रति महात्माजी के हृदय में अनन्त श्रद्धा है।

महात्माजी कहते हैं—जिस समय तिलक मृत्यु-शय्या पर पड़े थे, उस समय उन्होंने महात्माजी की कार्य-प्रणाली के प्रति अपनी अनुमति प्रकट की थी। गाँधीजी प्रसिद्ध नेता गोपालकृष्ण गोखले को अपना राजनैतिक आचार्य मानते हैं। गांधीजी कहते हैं—"गोखले, उज्वल रत्न की भांति पवित्र, अबाध बालक की भांति सरल, सिंह की भांति वीर और सागर की भांति उदार थे।"

इन नेताओं के परामर्श से गाँधीजी ने दक्षिण-अफ्रीका और भारत में बृटिश शासन के साथ अपने न्याय-पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति के लिये शान्तिमय उपायों से समझौता करने का पूरा प्रयत्न किया। सत्याग्रह-आन्दोलन के समय गाँधीजी ने भारत में रहने वाले सभी अंग्रेज़ों के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी थी। इस चिट्ठी में गाँधीजी लिखते हैं—"मैं पूरे उन्तीस वर्ष तक भारत-सरकार के साथ पूर्ण सहयोग देता रहा हूँ। सरकार के साथ मेरे इस सहयोग का कारण न सरकारी क़ानून का भय था, और न उसमें मेरा कुछ अपना निजी स्वार्थ ही था। स्वेच्छापूर्वक गवर्नमेण्ट के प्रति मेरे इस सहयोग का कारण मेरा अपना विश्वास था। उस समय मैं समझता था, भारत-सरकार का उद्देश्य भारत की अवस्था को सुधारना है।"

गाँधीजी का यह विश्वास महा-युद्ध के समय और उसके पश्चात् भारतीयों के प्रति सरकार के व्यवहार के कारण बदल गया। युद्ध के समय भारत से सहायता लेने के लिये अंग्रेजी सरकार ने अनेक आशाएँ भारत को दिखाईं। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों के समान ही भारत को भी स्वतन्त्रता तथा आत्म-निर्णय-पूर्ण अधिकार देने की प्रतिज्ञा की गई। भारत ने इस प्रतिज्ञा पर विश्वास कर, इङ्गलैण्ड को पूरी सहायता दी। धन और तन से इङ्गलैण्ड को सहायता देने में भारत ने किसी प्रकार की कमी न

की। गाँधीजी ने स्वयं उत्साहपूर्वक हजारों आदमियों को अंग्रेजी फौज में भर्ती होने के लिये प्रोत्साहित किया।

परन्तु जब यूरोपीय-महायुद्ध में जर्मनी हार गया, और इङ्गलैंड को विजय प्राप्त हो गई, तो इन प्रतिज्ञाओं को पूरा करने में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता न समझी गई। गाँधीजी को इस समय भी इङ्गलैण्ड का विश्वास था। वे समझते थे, कुछ देर में इङ्गलैण्ड अवश्य ही अपनी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करेगा। परन्तु जब युद्ध के समय के जारी किए गए दमन के क़ानून को सरकार ने रौलेट-एक्ट द्वारा अनिश्चित काल के लिये जायज़ करने का यत्न किया तो गांधीजी की आँखें खुलीं।

भारत की साम्राज्य-व्यवस्था सभा में जब यह क़ानून बहुत ही शीघ्र पास हो गया, तो गाँधीजी घबराए। इङ्गलैण्ड की सहृदयता पर से उनका विश्वास जाता रहा। उन्होंने अपने देश की स्वतंत्रता के लिये युद्ध करने का निश्चय कर लिया। वे लिखते हैं—'रौलेट-एक्ट भारतवासियों को मनुष्यता के अधिकार से वञ्चित करने का एक साधन था। किसी भी शासन को, चाहे वह कितना ही स्वेच्छा-चारी क्यों न हो—मनुष्य को मनुष्य के अधिकार से वञ्चित करने का अधिकार नहीं है।'

इस क़ानून का विरोध करने लिये सम्पूर्ण भारत एक स्वर से गाँधीजी के नेतृत्व में उठ खड़ा हुआ। ६ एप्रिल १९१९ के दिन सम्पूर्ण भारत में इस क़ानून के विरोध में सभाएँ हुईं और हड़ताल मनाई गईं। गाँधीजी एक स्थान पर लिखते हैं—'सार्वजनिक आन्दोलन को नष्ट होने से बचाने के लिये तथा उसे हिंसा और रक्तपात से दूर रखने के लिये मैंने जनता के सम्मुख सत्याग्रह का कार्य-क्रम उपस्थित किया……।" इस हड़ताल में लोग सर्वथा शान्त रहे। कहीं भी—केवल देहली को छोड़कर किसी भी प्रकार का उपद्रव न हुआ।

देहली में उपद्रव का समाचार सुनकर गांधीजी उसे शान्त करने के लिये दौडे। परन्तु सरकार ने उतावली मे आ उन्हें रास्ते मे ही, पलवल स्टेशन पर गिरफ्तार कर, बम्बई वापस भेज दिया। गाँधीजी की गिरफ्तारी के समाचार के परिणाम बहुत भयंकर हुआ। पञ्जाब में भयङ्कर उपद्रव खड़ा हो गया। अमृतसर में जालियांवाला बाग में, जनरल डायर ने मैशीनगन से हजारों आदमियों को भून डाला। पञ्जाब-भर मे मार्शल-ला का ऐलान हो गया। भारत के राष्ट्रीय नेताओं के पुकार मचाने पर सरकार ने मामले की छान-बीन के लिये एक कमेटी नियुक्त कर दी। इस कमेटी ने उल्टे अँग्रेजी अफ़सरों की निरकुशता और निर्दयता का समर्थन किया। दोषी अफ़सरों को कुछ भी दण्ड न दिया गया।

पञ्जाब के अमानुषिक अत्याचारो के कारण भारत की सम्पूर्ण हिन्दू-जनता बेचैन-सी हो रही थी। इसी समय मुसलमानों में खिलाफत-आन्दोलन का भी आरम्भ हो गया। भारत के मुसलमानों ने युद्ध के समय इङ्गलैण्ड को सहायता इस शर्त पर दी थी, कि युद्ध के पश्चात् टर्की के साथ कठोरता का व्यवहार न किया जायगा। युद्ध की समाप्ति पर जब टर्की पर कठोर प्रतिबन्ध लगाए गए, तो भारत के मुसलमान इस प्रतिज्ञा-भङ्ग के कारण सरकार से बिगड़ खड़े हुए। उन्होने लार्ड चेम्सफोर्ड तथा लायड जार्ज की प्रतिज्ञा की सुधि दिलाकर टर्की के सुलतान को संसार-भर के मुसलमानों की हैसियत से, उसका सिंहासन वापस कर देने की मांग की। इङ्गलैण्ड के इस प्रार्थना को स्वीकार न करने पर अली-भाइयों के नेतृत्व मे, खिलाफत का आन्दोलन सरकार की नीति के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ।

१९

आरम्भ में गांधीजी का असहयोग-आन्दोलन केवल निषेधात्मक था। इसका अभिप्राय सरकार से सम्पर्क न रख, शासन-प्रबन्ध में किसी प्रकार की सहायता न देना था। परन्तु इस आन्दोलन का निषेधात्मक पहलू भी जनता के सम्मुख इङ्गलैण्ड के विरुद्ध भारत के संपूर्ण पारस्परिक सहयोग के रूप में, शीघ्र ही आ गया। भारत में इस एकता की स्थापना चाहे वह बहुत अंश तक अपूर्ण और क्षणिक ही क्यों न हो, एक विशेष महत्व-पूर्ण कार्य था। हिन्दुओं और मुसलमानों के सैकडो वर्ष से चले आ रहे गहरे भेद-भाव को दूर हटा देना, राजनैतिक दृष्टि से गाधीजी की अद्वितीय सफलता थी। गांधीजी को हम भारतीय राष्ट्र का जन्म-दाता कह सकते हैं। गांधीजी से पहले राष्ट्रीय भाव भारत में सर्वथा अस्पष्ट और अव्यक्त था।

जिस प्रकार रूस में लेनिन ने सामाजिक क्रान्ति की सफलता के लिये किसानों और मजदूरों तथा नगर और ग्राम को एकता के सूत्र मे बँधने की आवश्यकता के महत्व को सबसे पहिले समझा था, ठीक उसी तरह स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये भारतवर्ष में

गांधीजी ने भी भारत की भिन्न-भिन्न जातियों, उपजातियों, तथा सम्प्रदायों की एकता की आवश्यकता को जनता के सम्मुख रखा।

हिन्दुओं और मुसलमानों के इस पारस्परिक झगडे को दूर करने का यत्न पहले भी अनेक बार हो चुका है। सोलहवीं शताब्दी में पारस्परिक वैर-विरोध से दुखी होकर स्वयं सम्राट् अकबर ने सब सम्प्रदायों के प्रति सहनशीलता का प्रचार किया था। परन्तु उसे विशेष सफलता न मिल सकी थी। इसके पश्चात् सिक्ख सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक ने भी इस भेद-भाव को मिटाने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक-सूत्र में बाँधने की कोशिश की, परन्तु इसका भी अभिप्राय उल्टा ही हुआ। देश में एक तीसरा सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ।

इस समय भी भारत के शिक्षित जन-समुदाय के हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य तथा भेद-भाव को दूर करने के यत्न जारी हैं। विशेषतः बङ्गाल में राजा राममोहनराय के नेतृत्व में ब्रह्म-समाज ने भी इस सम्बन्ध में यथेष्ट काम किया। देवेन्द्रनाथ टागोर, केशवचन्द्र सेन आदि इस आन्दोलन में सम्मिलित रहे हैं। आज रवीन्द्र भी इस भेद को दूर करने के लिये अपनी शक्ति लगा रहे हैं।

एकता का होना सम्भव न हो सकेगा, और न एक भारतीय राष्ट्र का निर्माण ही हो सकेगा।

सदियों से चले आ रहे, इस भेद-भाव की परिस्थिति में १९१९ में सहसा परिवर्तन आ गया। खिलाफत-आन्दोलन के कारण मुस्लिम जनता सरकार की छत्रच्छाया से निकलकर स्वराज्य के मामले में हिन्दुओं का साथ देने पर उतारू हो गई। गांधीजी ने अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक अपने अनुयाइयों को मुसलमानों के आन्दोलन का साथ देकर उन्हें सरकार के विरुद्ध हिन्दुओं के साथ मिला लेने का परामर्श दिया।

यद्यपि अब भी अनेक अवसरों पर दोनों जातियों में वैमनस्य के पुराने भाव जाग उठते हैं और थोड़ा-बहुत रक्त-पात कहीं-कहीं हो ही जाता है, परन्तु पहले की अपेक्षा अब एकता का भाव कहीं अधिक है। मुसलमान नेताओं ने भी गांधीजी के साथ पूर्ण सहयोग किया, और अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस में सम्मिलित हो, कार्य-क्रम पर चल, हिन्दुओं के साथ स्वराज्य-आन्दोलन में मुसलमानों ने भी सहयोग दिया।

हिंदू-मुस्लिम-एकता के संबंध में दिए हुए अनेक व्याख्यानों और लेखों में गांधीजी ने दोनों सम्प्रदायों के लिये समान-अधिकार और साम्प्रदायिक स्वतंत्रता का समर्थन किया है। उनके विचार में साम्प्रदायिक भावों तथा संस्कृति का एकता के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहिए। वे कहते हैं—"मुझे हिंदुओं तथा मुसलमानों में कोई भी अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। मेरे लिये वे दोनों भारत-माता के दो पुत्र हैं। मैं यह जानता हूँ, संख्या में हिंदू मुसलमानों से अधिक हैं। वे शिक्षित तथा अपेक्षाकृत उन्नत भी हैं। इसलिये हिंदुओं का कर्त्तव्य है, कि वे अपने मुसलमान भाइयों की स्थिति सुधारने का यत्न करें। जब मुसलमान तथा हिंदू भाई-भाई के रूप में एक-

दूसरे की सहायता करना आरम्भ करेंगे, तभी भारत में स्वतंत्रता की उषा का आगमन होगा।"

गाँधीजी का विश्वास है, इस एकता से न केवल राजनैतिक स्वतंत्रता का मार्ग तैयार होगा, बल्कि भारत मे एक हिंदू-मुस्लिम-मिश्रित संस्कृति इससे उत्पन्न हो सकेगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये गाँधीजी के अहमदाबाद के विद्यापीठ मे अरबी, ईरानी तथा भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। 'यङ्ग इण्डिया' के एक लेख में उन्होने अपनी विद्यापीठ के सम्बंध में लिखा था— "हमारे विद्यापीठ का प्रयोजन केवल प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान ही नहीं है, बल्कि हम भारत मे एक नवीन सभ्यता का विकास करना चाहते हैं, जिसमें प्राचीन तथा अर्वाचीन सिद्धांतों का मेल रहेगा। भारत की सभी संस्कृतियों को एक-साथ लेकर, भारत के वातावरण के अनुसार हम उनके सम्मिलित रूप को प्रकट करना चाहते हैं। इस संस्कृति का मूल भारतीयता होगी। सभी संस्कृतियों, धारणाओं, विश्वासों और प्रवृत्तियों को हम विकास का पूर्ण अवसर देना चाहते हैं। अमेरिका की तरह कृत्रिम उपायों से एक देश की सभ्यता को मुख्य स्थान देकर शेष को कुचल देना हम उचित नहीं समझते।"

महात्माजी के इन क्रान्तिकारी विचारों का देश मे विरोध भी होता है। गाँधीजी के प्रतियोगी शंकरन् नायर ने उनके सिद्धांतों की कड़ी समालोचना भी की है। वे लिखते हैं'-'गांधीजी की हिंदू-मुस्लिम-एकता का अर्थ है, मुसलमानो का प्रभुत्व स्वीकार कर लेना। महात्माजी मुसलमानो को प्रसन्न करने के लिये बहुत अधिक बढ़ रहे हैं। उन्होने हिंदुओ के सब हित मुसलमानों की दया पर छोड़ दिये हैं। महामना मालवीय, भाई परमानंद, डाक्टर मुंजे आदि भी ऐसा ही मानते हैं। उनका भी विश्वास है कि महात्मा

गाँधी डॉक्टर अनसारी आदि मुस्लिम कांग्रेस वादियों के हाथ की कठपुतली हैं।"

एक लेखक ने अपने लेख में मुसलमानों की अहिंसात्मक आन्दोलन में सम्मिलित होने की अयोग्यता दिखाते हुए लिखा है—"मुसलमान-लोग प्रकृति से ही हिंसावादी हैं। उनके धार्मिक ग्रन्थ भी युद्ध तथा हिंसाकारी उपदेश देते हैं। इसलिये उनका अहिंसात्मक आन्दोलन में सम्मिलित होना सम्भव नहीं।" इस लेख का उत्तर देते हुए गाँधीजी लिखते हैं—"अनेक मुसलमान सज्जनों से मेरा सम्पर्क रहा है। मैं अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ, इस्लाम के विषय में उसके तलवार द्वारा फैलने की धारणा ठीक नहीं है। इस्लाम का प्रचार करनेवाली शक्ति, इस्लाम का व्यापक प्रेम और उसके फकीरों का त्याग भी है। इस्लाम में तलवार के प्रयोग का समर्थन भी है। परन्तु उसके लिये जो शर्तें लगाई गई हैं, उनका पालन करना किसी बिरले का ही काम है। इस्लाम, त्यागी, तपस्वी और प्रेम से पूर्ण हृदय को ही तलवार के प्रयोग की आज्ञा देता है।"

१०

गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस तथा खिलाफ़त के सम्मिलित आन्दोलन से दबकर सरकार शासन मे सुधार करने के लिये तैयार हो गई। २४ दिसम्बर सन् १९१९ ई० को बहुत-से राजनैतिक बंदियों को छोड़ दिया गया, और एक क़ानून से केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकार में कुछ सुधार कर, भारतीयों को थोड़ा-बहुत उत्तरदायित्व सौंपा गया। गांधीजी ने समझा—इङ्गलैण्ड का हृदय पसीज गया है। अंग्रेजी सरकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर, वे उसे कांग्रेस के सम्मुख ले गए।

परंतु सन् १९२० मे ही गांधीजी का सब भ्रम दूर हो गया। अब गवर्नमेंट के साथ उन्होंने पूर्णत. संबंध-विच्छेद कर दिया। लो० मान्य की मृत्यु के पश्चात् गांधीजी सर्व-प्रधान नेता समझे जाने लगे। ठीक इसी समय, जब कि पञ्जाब का हत्याकाड हो चुका था, टर्की के साथ मित्र-दल की शर्तें भी प्रकट हुईं। हिंदू-लोग पंजाब के हत्याकाण्ड के लिये उत्तरदायी अफ़सरों को दण्ड न मिलने के कारण राष्ट्रीय अपमान से उद्विग्न हो रहे थे, टर्की को सुलह की शर्तों के कारण धार्मिक भाव को ठेस पहुँचने से मुसल-

मान भी सरकार से खिन्न हो गए। इन दोनो सम्प्रदायों ने गाधीजी के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार से पूर्ण असहयोग कर लेने का निश्चय कर लिया। गाँधीजी ने एक पत्र लिखकर वाइसराय को अपने निर्णय करने की सूचना कर दी। पत्र मे उन्होने स्पष्ट लिख दिया था—कि वे असहयोग तथा अहिंसात्मक सत्याग्रह से सरकार का मुकाबला करने जा रहे हैं। गाधीजी ने सुलह-समझौता के लिये कोई स्थान न रखा हो, सो बात नहीं। समझौते के लिये सदा तैयार रहने के लिये अपनी इच्छा उन्होंने इस पत्र मे तथा सन १९३० के सत्याग्रह आदोलन के प्रारंभ मध्य मे भी प्रकट कर दी है।

जिन कारणों से महात्माजी को अहिंसात्मक सत्याग्रह का आन्दोलन आरम्भ करना पड़ा, उन्हें जानने के लिये, महात्माजी ने उस समय जो पत्र भारत में रहनेवाले सब अंग्रेजों के नाम लिखा था, उसका अध्ययन अवश्य लाभदायक होगा। उनके कार्य-क्रम का सार सक्षेप मे इस पत्र मे आ जाता है। अपने पत्र में गाँधीजी लिखते हैं—"मुझे आशा थी, कि लायड जार्ज भारत के मुसलमानो के प्रति की गई प्रतिज्ञा को अवश्य पूर्ण करेंगे, और पंजाब मे अंग्रेज अफसरो द्वारा जो कुछ अन्याय हुआ है, उसकी भी हानि-पूर्ति की जायगी। लायड जार्ज के प्रतिज्ञा-भङ्ग से उनपर तथा उनकी जाति की सहृदयता पर जो उनके इस कृत्य में उनकी समर्थक है, मेरा विश्वास अब कत्तई नहीं रह गया है। आपलोगों ने पञ्जाब के अमानुषिक अत्याचारों की प्रशंसा कर, तथा भारत के मुसलमानों के साथ की गई प्रतिज्ञा को भंगकर हमारे भावों को ठुकरा दिया है।......आप लोग समझते हैं, कि हम भारतवासी आपसे लड़कर शासन-दण्ड नहीं छीन सकते। आप लोग समझते हैं, भारतवासी निःशक्त और निर्बल हैं। आपने स्वयं ही इस देश को इस अवस्था तक पहुँचा दिया है। हम लोग युद्ध-क्षेत्र में वीरता-

पूर्वक लड़ने के अयोग्य हैं, परन्तु हमारी आत्मा अब भी आप लोगों का मुकाबिला भली प्रकार कर सकती हैं। मेरा विश्वास है कि युद्ध में सिर झुकाना ही पड़ेगा। हमारा भरोसा आत्म-बल पर है। असहयोग का अर्थ है—केवल आत्म-त्याग...... ।

महात्माजी ने अपने विचारों को जनता के सम्मुख रखने के लिये अपने कार्य-क्रम से जनता को अवगत करने के लिये स्थान-स्थान पर घूमकर अनेक लेख लिखे, तथा व्याख्यान दिए। इनका विचार है, प्रजा को अयोग्य शासन के प्रति असहयोग करने का प्रकृति-दत्त अधिकार है। आन्दोलन को सफल बनाने के लिये गाँधीजी जनता मे नियम और अनुशासन का होना आवश्यक समझते हैं। उनका विश्वास है, नियम और अनुशासन की रक्षा अहिंसा के मार्ग पर चले बिना नहीं हो सकती। इसलिये गाँधीजी ने अपने अनुयायियों के लिये अहिंसा-व्रत को अनिवार्य ठहराया। गाँधीजी लिखते हैं—"सरकार के कर्मचारियों तथा अपने विरोधियों के प्रति बल-प्रयोग करने से प्रथम तो हम अपने कर्तव्य से च्युत होंगे और फिर रक्त-पात का पाप भी हमारे सिर आएगा। इसलिये जो लोग असहयोग आन्दोलन को थोड़े समय मे सफल बनाना चाहते है, उन्हे अहिंसा व्रत का पालन पूर्ण निष्ठापूर्वक करना चाहिए।"

गाधीजी का विश्वास है, सरकार प्रजा की अनुमति और सहायता के बिना देश मे रह ही नहीं सकती। इसलिये शासन के विरुद्ध जो लोग असहयोग नहीं करते, वे देश में अत्याचारी शासन को बनाए रखने के लिये उत्तरदायी हैं। गांधीजी लिखते हैं—"यदि घर मे पिता अन्याय करे, तो उससे असहयोग कर, घर छोड़ देना चाहिए। यदि पाठशाला मे गुरु का व्यवहार नीति विरुद्ध हो-तो शिष्यों को स्कूल छोड़ देना चाहिए। यदि किसी सभा अथवा संघ

का प्रधान बेईमान हो, तो सदस्यों को सभा से अपना सम्बंध तोड देना चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी देश का शासक अन्याय करे, तो प्रजा को उस शासक से असहयोग कर, उसे कुमार्ग में जाने से रोकना चाहिए। उपरोक्त सभी अवस्थाओं मे असहयोगी को कुछ-न-कुछ कष्ट और हानि उठानी ही पड़ेगी।......मेरा विचार है, संसार मे कष्ट और हानि सहे बिना हम स्वतंत्रता प्राप्त कर ही नहीं सकते।"

उपरोक्त धारणा के अनुसार गाँधीजी ने भारत की जनता को अंग्रेजी शासन से सहयोग कर, अन्याय का उत्तरदायित्व अपने सिर लेने से मना कर दिया। शासक-शासित के परस्पर सामाजिक समझौते को तोडकर उन्होंने भारत की जनता को सरकार से राजनैतिक संबंध-विच्छेद कर लेने के लिये कहा। गाँधीजी ने कहा, जब तक सरकार अपने अपराधों के लिये प्रायश्चित्त न करेगी— हमारा उससे और उसकी संस्थाओं से कुछ भी संबंध न होगा। गाँधीजी असहयोग तथा बहिष्कार मे बहुत भेद मानते हैं। उनका कहना है—बहिष्कार मे प्रतिकार के भाव का समावेश होने से उसमें हिंसा का लेश आ जाता है। वे कहते हैं—"यदि हम असहयोग के मार्ग से हटकर बहिष्कार को अपना ध्येय बनाएँगे, तो हम उन्नति की बजाय अवनति की ओर बढ़ेंगे। मेरे विचार में असहयोग के साथ अहिंसा का भाव अवश्य सम्मिलित होना चाहिए। उससे हानि पहुँचाने, बदला लेने और घृणा के भाव का कोई संबंध नहीं होना चाहिए। हमारे आन्दोलन की विशेषता उसकी आध्यात्मिकता तथा प्रेम की शक्ति है। हमे अपने शत्रु को न-केवल शारीरिक कष्ट पहुँचाने से परहेज करना चाहिए, बल्कि उसे मानसिक कष्ट से भी बचाना चाहिए। यदि हम अहिंसा की नीति का अवलम्बन इस ढंग से न करेंगे, तो हमारा असहयोग-आन्दोलन एक निःशस्त्र

संग्राम का रूप धारण कर लेगा। ऐसा होने से उसमें और पशु-बल के प्रयोग में विशेष अंतर न रह जायगा।"

गाँधीजी का विश्वास है, सरकार भारत में उठे हुए किसी सशस्त्र आन्दोलन को अपनी सैनिक-शक्ति से बहुत शीघ्र कुचल सकती है। परंतु अहिंसात्मक आन्दोलन के असहयोग को दबा सकना सरकार की सामर्थ्य के बाहर है। सत्याग्रह-आन्दोलन की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है, कि जनता में सरकार को हानि पहुँचाने या तंग करने का भाव बिलकुल नहीं पाया जाता। सत्याग्रह-आन्दोलन की सफलता का परिणाम इस बात पर निर्भर नहीं, कि उससे सरकार के मार्ग मे कितनी उलझन पैदा होती है, अपितु इस बात पर निर्भर है कि जनता में परस्पर विश्वास और सहयोग किस परिमाण मे बढ़ रहा है।

गाँधीजी लिखते हैं—"असहयोग-आन्दोलन में हम अंग्रेजों को निमन्त्रण देते हैं, कि वे इस देश से विदेशी शासन को दूर करने के प्रयत्न में हमारे साथ सहयोग दें। हम इस आन्दोलन-द्वारा अंग्रेजों के साथ अपने आत्म-अभिमान तथा प्रतिष्ठा को बनाए रखकर नए सिरे से स्थायी तथा अधिक स्वाभाविक ढंग पर सहयोग स्थापित करना चाहते हैं।"

गाधीजी भारत की इस स्वतंत्रता के आन्दोलन का आधार राष्ट्रीय भाव को न मानकर मनुष्यता को मानते हैं। वे लिखते हैं—"यह तो ठीक है—कि मेरा जन्म भारतवर्ष मे हुआ है, मैं भारतीय संस्कृति का भक्त हूँ, इस देश की सेवा के लिये मेरा शरीर अर्पण हो चुका है और मेरे जीवन का उद्देश्य इस देश के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करना है, परतु अपनी मातृ-भूमि का प्रेम न-केवल मुझे अन्य देशों के प्रति न्याय का व्यवहार करने का उपदेश देता है, वल्कि मैं संसार की सब जातियों की सेवा करना अपना मुख्य कर्तव्य

समझता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि भारत की स्वतंत्रता संसार की शान्ति-रक्षा मे विघ्न-स्वरूप न होकर सहायक ही होगी।"

यूरोप के राष्ट्र-वाद की तरह भारत के असहयोग-आन्दोलन में वैसा कोई भाव नहीं, जिसके कारण संसार की शांति के लिये आशंका का कोई कारण हो सके। गाँधीजी के राष्ट्र-वाद में संकीर्णता तथा अन्य राष्ट्रों के प्रति हिंसा का भाव नहीं है। इस आन्दोलन मे भारत संसार के प्रति अपने कर्तव्य को निबाहकर, उऋण होने के लिये उत्साह-से कार्य क्षेत्र में बढ रहा है। भारत के राष्ट्र-वाद की सबसे बड़ी विशेषता है, उसकी अहिंसात्मक और आध्यात्मिक वृत्ति को जन्म दे दिया है, जिसमे कभी संसार के अमंगल की संभावना हो ही नहीं सकती।

गाँधीजी ने अपने लेख मे देश भक्ति की जो परिभाषा की है, उससे उनके विचार सर्वथा स्पष्ट हो जाते हैं। वे लिखते हैं—"मेरे लिये देश का अर्थ मनुष्यता है और देश-प्रेम का अर्थ है, मानव-जाति के प्रति प्रेम। मैं भारत के हित के लिये इङ्गलैंड, जर्मनी, अथवा फ्रान्स को हानि पहुँचाना स्वीकार नहीं कर सकता। साम्राज्य-वाद को मैं नीति-विरुद्ध समझता हूँ।"

गाँधीजी ने अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह के कार्य-क्रम को असहयोग की चार भिन्न-भिन्न श्रेणियों मे बाँट दिया है। आवश्यकता और अवस्था के अनुसार कार्य-क्रम के यह भिन्न-भिन्न भाग राष्ट्र के सम्मुख रक्खे जा सकते हैं। असहयोग के पहले भाग में सरकार-द्वारा दिए गए सम्मान तथा पदवियों को लौटा देना है। तीसरी अवस्था मे पुलिस तथा सेना का सरकार को जवाब दे देना है। चौथी और अन्तिम है—सरकार को सब प्रकार के करों का देना बंद कर देना।

आरम्भ मे गाँधीजी ने असहयोग के कार्य-क्रम का पहला भाग

जनता के सम्मुख रक्खा। सरकार-द्वारा दिए गए सम्मान, पदवियों, अवैतनिक पदों, अदालतों, स्कूलों, कालिजों, व्यवस्थापक-सभाओं से असहयोग कर, सरकार को ऋण-आदि न देने के लिए उन्होंने जनता को कहा। स्वयं भी वायसराय को एक पत्र लिखकर इन्होंने अंग्रेजी सरकार-द्वारा दिए गए सम्मान तथा पद वापिस कर दिए।

महात्माजी के इस उदाहरण का अनुकरण जनता ने भी किया। अनेक देशी अफसरों ने भी अपने पद त्याग दिए। स्कूल और कालेज खाली हो गए। लोगों ने अदालतों मे जाना बंद कर दिया। कांग्रेस ने न-केवल गाँधीजी के इस प्रस्ताव का समर्थन किया, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर असहयोग-कार्य-क्रम के चौथे भाग पर भी अमल करने लगी। सरकार के दमन का दौरा शुरू होने के पूर्व ही कांग्रेस ने महात्माजी को सम्पूर्ण अधिकार सौंप कर उन्हें 'डिक्टेटर' ही नियुक्त कर दिया। गाँधीजी को न केवल 'डिक्टेटर' ही बना दिया गया, बल्कि उन्हें यह भी अधिकार दे दिया गया, कि स्वयं गिरफ्तार हो जाने पर जिस व्यक्ति को योग्य समझें, अपने पीछे डिक्टेटर नियत कर दें।

गाँधीजी के आन्दोलन का उद्देश्य है, भारत के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना—विदेशी शासन के पंजे से मुक्त कर, भारत के लिये आत्म-निर्भर का अधिकार प्राप्त करना। गाँधीजी इस उद्देश्य को अनायास ही प्राप्त करने की कभी आशा नहीं करते। वे कहते हैं—"भारत को स्वतंत्रता के लिये अपना अमूल्य रक्त बहाना होगा।"

आन्दोलन के आरम्भ मे सरकार चुपचाप रहकर हस्ताक्षेप के लिये अवसर की प्रतीक्षा करती रही। गाँधीजी इस बात को समझते थे। उन्होंने इस अवसर से लाभ उठाया। सरकार ने प्रकट रूप से जनता को सहयोग करने पर बाध्य नहीं किया, परंतु

अान्दोलन के सम्मुख सिर झुकाकर गाँधीजी की माँग को पूरा करने की भी इच्छा प्रकट नहीं की। ज्यों-ही महात्माजी असहयोग की पहली सीढ़ी पार कर सविनय कानून-भंग करने वाले थे, उसी समय चौरी-चौरा के भीषण उपद्रव में अनेक पुलिस-कर्मचारी मारे गये। जनता के संयम और अनुशासन का अभाव देखकर गाँधीजी बहुत दुखी हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि जनता के हृदय में अहिंसा के प्रति श्रद्धा नहीं है। उन्होंने सविनय-कानून-भंग के कार्य-क्रम को स्थगित कर दिया। जनता के अपराध का दंड स्वयं अपने-आपको देने के लिये उन्होंने पाँच दिन तक उपवास किया।

बहुत संकोच और उधेड़-बुन के पश्चात् सरकार ने गाँधीजी को १६२२ के वसंत मे गिरफ्तार कर, अदालत में पेश किया। इस गिरफ्तारी के लिये प्रकट कारण था, महात्माजी के चार लेख, जिन्हें उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित किया था। सरकारी वकील ने महात्माजी पर भारत में कानून और विधान से स्थापित सम्राट् की सरकार के विरुद्ध बगावत का दोषारोपण किया। २२ मार्च १६२२ को गिरफ्तार कर, गाँधीजी को साबरमती के जेल में भेज दिया गया। मैजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित किए जाने पर गाँधीजी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उनके मित्र शंकरलाल बैंकर ने भी, जो 'यंगइण्डिया' के प्रकाशक और मुद्रक थे, और गाँधीजी के साथ एक ही अपराध के लिए गिरफ्तार किए गए थे, अपने अपराध को स्वीकार कर लिया।

२८ मार्च को गाँधीजी का अभियोग अहमदाबाद के जिला-जज मि० सी० एन० ब्रूमफील्ड के सामने पेश हुआ। महात्माजी ने सफाई पेश करने से इन्कार कर दिया। अभियोग में बहुत देर तक जज तथा सरकारी वकील मे बहस होती रही। गाँधीजी के अपना

अपराध स्वीकार कर लेने पर जज ने उसी समय मुकदमे का फैसला सुना देना चाहा। परंतु सरकारी वकील गाँधीजी पर चौरी-चौरा, मद्रास तथा बम्बई मे होनेवाले दंगो का दायित्व भी डालकर अभियोग की गम्भीरता को बढ़ा देना चाहा।

यह परिस्थिति उपस्थित होने पर गाधीजी उठे। उस समय उन्होने जो-कुछ अदालत के सामने कहा—वह चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होने सरकारी वकील-द्वारा उनपर उपद्रव के लिये लगाए गए उत्तरदायित्व को भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा—"मैंने उपद्रव और दंगा न होने देने के लिये पूरा प्रयत्न किया, परंतु यह मेरे मेरे हाथ की बात न थी। मेरे सम्मुख दो मार्ग थे। या तो मै देश में इस शासन-व्यवस्था और शासन-प्रणाली को सहन करता, जिसके कारण मेरी सम्मति मे देश को अपरमित हानि पहुँच रही है, या जनता के क्रोध और उद्वेग का परिणाम देखता। मैं मानता हूँ, इस उद्वेग और क्रोध का उत्तरदायित्व मुझ पर है। क्योंकि मैं ने जनता के सम्मुख वह सत्य रक्खा, जिसके कारण उनमें जागृति और उद्विग्नता उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक था। मुझे इस परिणाम के लिये शोक है, और मै अपराध का दंड भुगतने के लिये प्रस्तुत हूँ। मैं दया की याचना नहीं करता। जान-बूझकर अपराध करने के लिये, जो भी दण्ड क़ानून मुनासिब समझे, मुझे दे सकता है। मैंने जो-कुछ किया है, एक नागरिक की स्थिति में कर्तव्य समझकर किया है।"

मुझे विरोध नहीं और न सम्राट् के व्यक्तित्व से मुझे कुछ लेना है। वर्तमान शासन-व्यवस्था से ही मुझे विरोध है। क्योंकि मेरा विश्वास है, कि इस शासन से भारत को जो हानि हुई है, उसकी तुलना नहीं हो सकती। इस शासन-प्रणाली ने भारत के मनुष्यत्व का नाश कर दिया है। इस विश्वास के कारण वर्तमान शासन के प्रति सहयोग करना मेरी सम्मति से भयङ्कर पाप है। जिन लेखों के आधार पर मुझपर यह अभियोग चलाया गया है, उन्हें मैंने अपना कर्तव्य समझकर ही लिखा था।......मैं अपने देशवासियों को यह समझा देना चाहता हूँ, कि हिंसा से केवल अन्याय की वृद्धि होती है। अहिंसा ही अन्याय का अवरोध कर सकती है। मैं प्रसन्नतापूर्वक दण्ड सहने के लिये तैयार हूँ। जज-महोदय के सामने इस समय केवल दो ही मार्ग हैं। यदि वे मुझे निर्दोष समझते हैं, तो छोड़ दें—परंतु इसका अर्थ होगा, कि वे वर्तमान शासन-द्वारा लागू क़ानून को अनुचित और अन्यायपूर्ण समझते हैं। इस अवस्था में उन्हें स्वयं भी अपने पद का त्यागकर वर्तमान सरकार के साथ असहयोग करना पड़ेगा। यदि वे वर्तमान शासन और क़ानून को न्यायानुकूल और देश के लिये कल्याणकारी समझते हैं, तो मुझे भी दोषी होने के कारण उन्हें अधिक-से-अधिक दण्ड देने की व्यवस्था करनी चाहिए।"

गाँधीजी के अपना वक्तव्य समाप्त कर चुकने पर जज ने अपना भाषण आरम्भ किया। उन्होंने कहा—"मेरे सम्मुख एक विकट समस्या उपस्थित है। व्यक्तिगत तौर पर मैं गाँधीजी के विचारों और उनकी उदारता की प्रशंसा करता हूँ।......ऐसे व्यक्ति भारत में बहुत कम होंगे, जिन्हें गाँधीजी के जेल जाने से दुख न होगा। परंतु आपने स्वयं ही गवर्नमेण्ट के लिये अपने-आपको जेल जाने से स्वतंत्र रहने देना असम्भव बना दिया है।......मैं अपने कर्तव्य

से बाधित होकर आपको छः वर्ष के लिये जेल का दण्ड देता हूँ। परंतु यदि देश की परिस्थिति मे परिवर्तन होने पर सरकार आपको जेल से स्वतंत्र कर देना चाहे, तो इस बात से मुझसे अधिक प्रसन्नता किसी दूसरे व्यक्ति को न होगी।"

गाँधीजी के जेल जाने के बाद भारत के राजनैतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन उपस्थित हो गए। देशबन्धु चितरञ्जनदास के नेतृत्व में एक दल व्यवस्थापक सभाओ का बहिष्कार न कर, उनमे सम्मिलित हो, शासन का विरोध करने का प्रयत्न करने लगा। मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-व्यवस्था के अनुसार भारत को स्वराज्य के योग्य बनाने के लिये १० वर्ष का समय नियत किया गया था। इस समय में भारतवासियो का आत्म-शासन की शिक्षा देने के लिये उन्हें व्यवस्थापक सभाओं मे सम्मिलित करने की व्यवस्था की गई थी। गाँधीजी ने इन व्यवस्थापक सभाओं का पूर्ण बहिष्कार कर दिया था। परंतु चितरञ्जनदास ने यही उचित समझा, कि इन कौंसिलों मे अधिक-से-अधिक संख्या मे सम्मिलित होकर भारत का शासन-विरोध भीतर से किया जाय। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस मे चितरञ्जनदास के पक्ष की विजय हुई और देश उनके कार्य-क्रम पर चलने के लिये तैयार हो गया। व्यवस्थापक सभाओं मे सभासद भेजने के अतिरिक्त कोई दूसरा परिवर्तन का कार्य इस कार्य-क्रम मे न किया गया। अहिंसा के सिद्धान्त का समर्थन दास ने भी गाधीजी के समान ही किया। यूरोपियन सभ्यता और संस्कृति के सम्बध में भी दास के विचार गांधीजी से भिन्न नहीं थे। एक स्थान पर वे लिखते हैं—"मैशीन के चक्कर में फँसकर हम स्वयं भी मशीन के एक भाग-मात्र बन जाएंगे। हम अपना मनुष्यत्व खोकर निर्जीव हो जाएंगे।......मैशीन शैतान का चरखा है, और मनुष्य-समाज को बुराई की ओर ले जाती है।"

इसी बीच गांधीजी यरवदा-जेल मे बहुत अधिक बीमार पड़ गए। जेल मे ही उनका आपरेशन किया गया, और बाद में निर्बलता के कारण उन्हे जेल मे रिहा भी कर दिया गया। कार्य-क्षेत्र मे लौटकर उन्होने स्वराज्य-दल के प्रभाव से परिस्थिति को सर्वथा बदले हुए पाया। गांधीजी ने इस स्थिति का विरोध न कर, स्वराज्य-दल के निर्णय के अनुकूल काम करना आरम्भ कर दिया। इससे सभी को, स्वयं उनके अनुयायियो को भी, बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होने स्वराज्य-दल की बात मानकर, व्यवस्थापक सभाओं के बहिष्कार को रद्द कर दिया, और अपनी सम्पूर्ण शक्ति-हिंदू-मुस्लिम-एकता, अछूतोद्धार तथा चरखे मे लगा दी।

पिछले दिनो में सरकार ने एक घोषणा प्रकाशित की थी कि एक स्वतंत्र कमेटी बनाकर भारत के राजनीतिक जीवन और उसकी मांगो के संबंध में तहकीकात कराई जायगी। इन तहकीकातों का भारत को कई बार का कटु अनुभव हुआ था, यह कमीशन सर जान साइमन के उत्तरदायित्व पर इङ्गलैण्ड से रवाना हुआ और साइमन कमीशन के नाम से भारत पहुँचा।

भारतवर्ष में सर्वत्र ही उसका बहिष्कार किया गया। यहाँ आकर के वह कमीशन भारत के नगरों मे घूमा और जहाँ-जहाँ पर वह गया, वहीं पर उसका काले झंडो के साथ स्वागत हुआ। इसी वर्ष कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते मे हुआ। इस बीच में, कांग्रेस ने एक और भी कार्य किया। कांग्रेस ने देश के प्रमुख विद्वानो की कमेटी बनाकर, एक ऐसी रिपोर्ट प्रकाशित करने का निश्चय किया, जो भारत के समस्त समुदायों की मांगों की रक्षा करती हो। पंडित मोतीलाल नेहरू के उत्तरदायित्व में इस कमेटी का कार्य प्रारंभ हुआ और उसकी रिपोर्ट नेहरू कमेटी के नाम से प्रकाशित हुई।

इस कमेटी का कार्य बड़े उत्तरदायित्व के साथ सम्पादित हुआ। इसके प्रकाशित हो जाने पर देश के स्थान-स्थान से उसका समर्थन किया गया। वह रिपोर्ट देश मे सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गई। सन् १९२८ ई० में कलकत्ते की कांग्रेस में फिर एक बार स्वराज्य की लहर उठी। उस कांग्रेस के निर्णय के अनुसार, सरकार को एक वर्ष का फिर अवसर दिया गया कि वह नेहरू-रिपोर्ट के अनुसार भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की व्यवस्था करे।

नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट को देश के सभी लोगो ने समान रूप से अपनाया। नरम दल वालों ने उसका समर्थन करके यह आशा की थी कि इस रिपोर्ट के अनुसार सरकार हमारी माँगें, अवश्य ही पूरी करेगी। इस पूर्ति की अवधि केवल सन् १९२९ ई० के दिनों मे ही समाप्त हो जाने को थी, इसलिये सरकार पर विश्वस और श्रद्धा रखनेवालों ने बड़ी उत्सुकता के साथ उसकी बाट जोही, बड़ी-बड़ी आशाओं के साथ, उसका रास्ता देखा, सम्पूर्ण वर्ष व्यतीत हो गया, किंतु कुछ भी नतीजा न निकला।

७१

भारतवर्ष सन् १९३० ई० का रास्ता देख रहा था, सरकार भी उसे किसी प्रकार भुला सकने मे समर्थ न थी। धीरे-धीरे सन् १९३० आ ही गया।

स्थगित किया हुआ सत्याग्रह-युद्ध सरकार के साथ फिर प्रारम करने के लिये, महात्मा गाधी ने घोषणा की। देश सचेष्ट हो उठा, महात्माजी ने सत्याग्रह के लिये प्रस्थान करने के पूर्व, लार्ड इरविन के नाम २-३-१९३० को सत्याग्रह आश्रम, साबरमती से एक पत्र लिखाः—

"मैं भारत में अंग्रेज़ी राज्य को एक बला मानता हूँ। लेकिन इसके कारण मैंने यह तो कभी सोचा ही नहीं कि सब-के-सब अंग्रेज दुनिया के दूसरे लोगों के मुकाबिले मे ज्यादा दुष्ट हैं। बहुतेरे अंग्रेजों के साथ गहरी दोस्ती रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यही नहीं बल्कि अंग्रेज़ी राज्य ने हिन्दुस्तान को जो नुक़सान पहुँचाया है, उसके बारे मे बहुतेरी हक़ीकतें तो मुझे उन अनेक अंग्रेजों की लिखी हुई किताबों से ही मालूम हुई हैं, जिन्होंने सत्य को उसके

सके रूप में, निडरतापूर्वक प्रकट किया है और इसके लिये मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ।

"तो फिर मै किस कारण अंग्रेजी राज्य को शापरूप मानता हूँ। कारण ये हैं—इस राज्य ने एक ऐसा तन्त्र खड़ा कर लिया है कि जिसकी वजह से मुल्क हमेशा के लिये बढ़ते हुए परिमाण में बराबर चूसा जाता रहे, अलावा इसके इस तंत्र का फौजी और दीवानी खर्च इतना ज्यादा तबाही करनेवाला है कि मुल्क उसे कभी बरदास्त ही नहीं कर सकता। नतीजा इसका यह हुआ है कि हिंदुस्तान के करोड़ों बेजबान लोग आज कंगाल बन गए हैं।

"राजनैतिक दृष्टि से इस राज्य ने हमे लगभग गुलाम बना डाला है। इसने हमारी संस्कृति और सभ्यता को बुनियाद को ही उखेड़ना शुरू कर दिया है। और लोगों से हथियार छीन लेने की सरकारी नीति ने तो हमारी मनुष्यता को ही कुचल डाला है। संस्कृति के नाश से हमारी जो आध्यात्मिक हानि हुई, उसमें हथियार न रखने के कानून के और बढ जाने से देश के लोगों की मनोदशा डरपोक और बेबस गुलामों की-सी हो गई है।

"पर आपकी घोषणा मे जिस 'डोमीनीयन स्टेटस' शब्द का जिक्र है, अगर वह शब्द अपने सच्चे अर्थ में प्रयुक्त किया गया होता तो आज 'पूर्ण स्वराज्य' के प्रस्ताव से भड़कने का कोई कारण ही न था। क्योंकि 'डोमीनियन स्टेटस' का अर्थ लगभग पूर्ण स्वाधीनता ही है। इस बात को प्रतिष्ठित बृटिश राजनीतिज्ञों ने खुद ही क़बूल किया है, और इससे कौन इनकार कर सकता है? लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि बृटिश राजनितिज्ञों की यह नीयत ही कभी नहीं थी कि भारतवर्ष को शीघ्र ही डोमीनीयन स्टेटस दे दिया जाय।

यह बात रोशनदान की तरह जाहिर है कि जिन राजनैतिक

परिवर्तनों से भारत के साथ इङ्गलैण्ड के व्यापार को जरा भी नुकसान पहुँचने की संभावना न हो। भारत के इङ्गलैण्ड के आर्थिक लेन-देन के औचित्य अनौचित्य की गहरी छानबीन के लिये एक निष्पक्ष पंचायत मुकर्रर करनी पड़े, वैसे राजनीतिक हेरफेर होने देने की नीति अख्तियार करने की ओर बृटिश-राजनीतिज्ञों का जरा भी रुख नहीं पाया जाता है। पर अगर हिन्द को चूसते रहने वाले इस तर्ज़-अमल का खात्मा करने का कोई इलाज न किया गया तो हिन्द की बरबादी की चाल रोजबरोज तेज ही होनेवाली है। आपके अर्थ-सचिव या खजाची कहते हैं कि १८ पेंस की विनिमय की दर तो विधि की लकीर की तरह अमिट है। इस तरह कलम के इस इशारे से भारतवर्ष के करोडों रुपए बाहर खिंचे चले जाते हैं और जब इस ओर ऐसी ही दूसरी बहुतेरी विधि की लकीरों को मेटने के लिये सत्याग्रह या सविनय क़ानून भंग की आजमाइश करने का गंभीर प्रयत्न शुरू किया जाता है तो आप भी धनवानों और जमीदारों वगैरह से यह अनुरोध किए बिना नहीं रहते कि वे देश में अमन-क़ानून की रक्षा के लिये ऐसे आन्दोलनों को कुचलने में आपको मदद करें।

"जिस मालगुज़ारी से सरकार को इतनी अधिक आमदनी होती है, उसीके भार से रिआया का दम निकला जा रहा है। स्वतंत्र भारत को इस नीति में बहुत-कुछ हेरफेर करना होगा। जिस स्थाई बन्दोबस्त की तारीफ के पुल बांधे जाते हैं, उससे सिर्फ मुट्ठीभर धनवान जमीदारों को ही फायदा पहुँचता है, आम रिआया को नहीं। इसीलिये मालगुजारी को बहुत-कुछ घटाने की जरूरत है। नमक-जैसी रात-दिन की ज़रूरी चीज़ पर भी जिसके बिना करोडों का काम चल ही नहीं सकता—महसूल के बोझ से इस तरह लाद दिया गया है कि उसका भार ख़ासकर गरीबों पर ही ज्यादा पडता

है। नमक ही एक ऐसी चीज़ है, जिसे धनवान या अमीर व्यक्तियों अथवा समुदायों के मुकाबिले में गरीब लोग अधिक खाते हैं। शराब और दूसरी चीज़ो से होनेवाली आमदनी का ज़रिया भी ये ही गरीब हैं। ये चीज़ें लोगो की तन्दुरुस्ती और नीति को जड़-मूल से मिटाने वाली हैं। पर व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के बहाने, जो कि झूठा बहाना है, इसका बचाव किया जाता है, सच तो यह है कि इनसे जो आमदनी होती है, उसके लिये ये विभाग क़ायम हैं। सन् १९१९ में जो सुधार जारी किए गए, उनके अनुसार इन मदों की आमदनी चतुराई के साथ नामधारी निर्वाचित मंत्रियो के जिम्मे कर दी गई, जिससे सब तरह की चीज़ों का व्यवहार बन्द करने से होनेवाला अधिक नुक़सान उन्हे ही सहना पड़ा, और शुरुआत ही से देश-हित के काम करना उनके लिए नामुमकिन हो गया। क्योंकि इस हालत मे शिक्षा-विभाग ही बन्द कर देना पड़ता। आमदनी को बढ़ाने वाला चर्खे—जैसा गृह-उद्योग नष्ट कर दिया गया है और इस तरह उन्हे आमदनी के इस ज़रिए से वंचित किया गया है।

"हिन्दुस्तान की तबाही का यह दर्द भरा क़िस्सा अधूरा ही कहा जायगा। जब तक हिन्द के नाम जो क़र्ज़ा लिया गया है, उसका जिक्र इस सिलसिले मे न किया जाय। लेकिन यह कहना ही काफी होगा कि इस तरह के तमाम क़र्ज़ों की पूरी-पूरी जाँच एक निष्पक्ष पचायत द्वारा कराई जानी चाहिए।

"यह जाहिर है कि मौजूदा विदेशी सरकार दुनिया-भर मे ज्यादा से-ज्यादा खर्चीली है और इसे बनाए रखने की गरज ही मे ये सारे पाप किए जा रहे हैं। आपको ही ले लीजिए। आपकी आमदनी माहवार २१,०००) से भी ज्यादा है। सिवा इसके उसमें भत्ता और दूसर सीधे-टेढे आमदनी के ज़रिए हैं ही। इङ्गलैण्ड के प्रधान मंत्री की तनख्वाह से इसका मुक़ाबिला कीजिए। उन्हे सालाना ५,०००

पौण्ड याने मौजूदा दर से हिसाब से माहवार ५,४००) से कुछ अधिक मिलता है। जिस देश मे आपको रोजाना आमदनी दो आने से भी कम है—उस देश मे आपको रोजाना ७००) से भी अधिक मिलते है, उधर इङ्गलैण्ड के बाशिन्दो की औसत दैनिक आय लगभग २) मानी जाती है और प्रधान मंत्री को रोज़ाना सिर्फ १८०) ही मिलते हैं।

"इङ्गलैण्ड जिस तरह इस देश को लूट रहा है, सारा हिन्दुस्तान उसका एक स्वर से विरोध कर रहा है, तो भी मैं देखता हूँ इङ्गलैंड का कोई भी बडा राजनितिज्ञ दल इस लूट को बन्द करने के लिये तैयार नहीं है।

"इसमे तो किसी भी पक्ष को शक नहीं है कि हिन्दुस्तान में जो हिंसक दल है, भले आज वह असंगठित और उपेक्षणीय हो, फिर भी, दिनोंदिन उसका बल बढ़ता ही जा रहा है और वह प्रभावशाली बन रहा है, उस दल का और मेरा ध्येय तो एक ही है। पर मुझे यकीन है कि हिन्दुस्तान के करोड़ो लोगों को जिस आज़ादी की जरूरत है वह इनके दिलाए नहीं मिल सकती। अलावा इसके मेरा यह विश्वास दिनोदिन बढ़ता ही जाता है कि शुद्ध अहिंसा के सिवा और भी किसी तरीके से वृटिश-सरकार की यह संगठित हिंसा अटकाई नहीं जा सकेगी। बहुतेरे लोगों का वह ख्याल है कि अहिंसा मे कार्यसाधक शक्ति नहीं होती। जो भी मेरा अनुभव एक खास हद तक ही महदूद रहा है तो भी मैं यह जानता हूँ कि अहिंसा मे जबर्दस्त कार्यसाधक शक्ति है।

"हृदय को बदल देने की बात मैं जानबूझ कर कह रहा हूँ। क्योंकि मैं अहिंसा-द्वारा अङ्गरेज़ लोगों के हृदय को इस तरह बदला चाहता हूँ कि, जिससे वे यह साफ-साफ देख सकें कि उन्होंने हिन्दुस्तान को कितना नुक़सान पहुँचाया है। मैं आपके देश-भाइयों

का बुरा नहीं चाहता। अपने देश-भाइयों की तरह मैं उनकी भी सेवा किया चाहता हूँ। मैं मानता हूँ कि मैंने हमेशा उनकी सेवा ही की है। सन् १९१९ तक मैंने आँखें बन्द करके उनकी सेवा की, लेकिन जब मेरी आँखें खुलीं और मैंने असहयोग की आवाज़ बुलन्द की। तब भी मेरा मक़सद उनकी सेवा करना ही था। जिस हथियार का मैंने अपने प्रिय-से-प्रिय सम्बन्धी के खिलाफ नम्रता से पर कामयाबी के साथ इस्तेमाल किया है, वही हथियार मैंने सरकार के खिलाफ भी उठाया है। अगर यह बात सच है कि मैं भारतीयों के समान ही अंग्रेजों को भी चाहता हूँ, तो यह ज्यादा देर तक छिपी नहीं रहेगी। बरसों तक मेरी परीक्षा लेने के बाद जैसे मेरे कुनबेवालों ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है, वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन कबूल करेंगे। मुझे उम्मीद है कि इस लड़ाई में आम रिआया मेरा साथ देगी, और अगर उसने साथ दिया तो—सिवा उस हालत के कि अंग्रेज़ लोग समय रहते ही समझ जाँय—देश पर आफ़त और दुःख के पहाड़ जो टूट पड़ेंगे उनके कारण पत्थर से भी कठोर दिलवालों के दिल पसीज जाँयगे।"

उपरोक्त उद्धरण से पाठक यह जान जायंगे कि महात्मागाँधी के भाव अंग्रेजों के प्रति कैसे हैं और भारत के लिये वे उनसे कितना भारी त्याग चाहते हैं। इसके बाद उन्होंने नमक-सत्याग्रह शुरू किया और वे गिरफ्तार कर यरवदा मे भेज दिए गए। इसके बाद उनसे और लार्ड इरविन से समझौता हुआ, जिससे वे कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि होकर विलायत गए। वहाँ से लौटने पर देश मे सरकार की ओर से दमन का चक्र पूरी तरह चलने के कारण उन्हे देश को पुनः सत्याग्रह करने के लिये आवाज़ उठानी पड़ी। पर दमन का ज़ोर इतना अधिक बढ़ा कि देश के कोने-कोने से चुने-हुए उनके साथी जेल भेज दिए गए। देश में हाहाकार मच गया।

जब सच्चे कार्यकर्त्ताओं के अभाव से कांग्रेस या महात्मागाँधी को छिपी नीति से कोई कार्य न करने के आदेश देने पर सामुहिक सत्याग्रह न करने का आदेश देना पड़ा और व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की योजना की गई। पर कार्यकर्त्ताओं में झंझट और शिथिलता आ जाने से पटने में गाँधीजी ने अनिश्चित काल के लिये सत्याग्रह के अस्त्र को म्यान में रखलेने का आदेश दे दिया।

साम्यवादियों की दलीलें

१

आज साम्यवादी सिद्धान्त के प्रचार के लिये हमरे यहाँ बड़ी ही उग्रता से कार्य किया जा रहा है। परतु साम्यवाद क्या है इसपर प्रकाश डाले बिना इसके सबंध मे मीमासा करनी अनुचित जान पड़ती है।

साम्यवाद की नींव औद्योगिक युग के आरम्भ के साथ ही पड़ी है और जो विविध अवस्थाओ से गुज़रता हुआ आज यूरोप और अमरीका के प्राय सभी देशों मे ज़ोर पकड़ता जा रहा है। इस आन्दोलन को अगरज़ी मे सोशलिज़्म भी कहते हैं और यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस आन्दोलन का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से जो प्रभाव ससार, और विशेषकर यूरोप-अमरीका के विचारों और भावो पर पड़ा है उसका अनुमान करना कठिन है। मानसिक क्षेत्र मे विरला ही ऐसा स्थान होगा जो इसके प्रभाव से बचा हो। आजकल श्रमजीवीवर्ग के लिये समाज में जो सहानुभूति पाई जाती है वह प्रत्यक्ष रूप से साम्यवादियों के आन्दोलन का ही परिणाम है।

साम्यवाद एक आर्थिक और राजनीतिक आन्दोलन है। साम्यवादी समाज की नींव एक नए ढंग पर रखना चाहते हैं। इन

की इच्छा एक नया औद्योगिक युग चलाने की है, जिसमें पूँजीपति की आवश्यकता ही न रहे और सब प्रबन्ध, मुनाफा इत्यादि श्रमजीवीवर्ग के हाथ मे ही हो। प्रारम्भ से सवा सौ वर्ष तक यह आन्दोलन पूंजीपति समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक गुलामी का घोर विरोध करता रहा। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में कार्लमार्क्स, हेनरी जार्ज इत्यादि साम्यवादी नेताओं के नेतृत्व में इस आन्दोलन ने रुद्ररूप धारण कर लिया है। यद्यपि यूरप की गवर्नमेण्ट प्रारम्भ से ही इस आन्दोलन को कुचलने और बदनाम करने का प्रयत्न करती रही, परंतु उन्नसवीं शताब्दी के अन्त से तो यह आन्दोलन देश के लिये राजनैतिक खतरे का कारण तक बन गया। रूस की वर्तमान राज्यक्रांति से वहाँ के साम्यवादी बोलशेविक उसकी गवर्नमेंट सम्हालने मे जो सफल हुए हैं, उसने साम्राज्यवादियों की आँखें तक खोल दी हैं और वे आजकल दिन-रात इस चिंता मे हैं कि बोलशेविकों के सम्बंध मे हर प्रकार की झूठी अफवाहें फैलाई जायें, जिसमे श्रमजीविवर्ग और निर्धन लोग धोखे में रहें और उनकी चाँदी खरी होती रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये धर्म, नीति और इतिहास का नाम लेकर झूठी और निर्मूल अफवाहें तक फैलाई जाती रही हैं, जिससे लोग उनके साथ सहानुभूति न करें। वास्तव मे इस आन्दोलन के साथ आरम्भ से ही अधिकारी और पूंजीपति समाज ऐसा ही व्यवहार करते रहे हैं। इसलिये हम उन अवस्थाओं का, जिनमे यह आन्दोलन आरम्भ हुआ, संक्षिप्त इतिहास और बोलशेविज़म का संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक समझते हैं।

वर्तमान औद्योगिक प्रणाली सर्वदा से ही नहीं चली आई और पूंजीपति और श्रमजीवी का वर्तमान संबंध भी उन्नसवीं शताब्दी का ही परिणाम है। इसके पूर्व कारीगर लोग सभी औद्योगिक पदार्थ

अपने-अपने घरों में ही बनाते थे और इनके काम में उनका सारा परिवार सम्मिलित रहता था। वस्तुओं की विक्री का काम भी कारीगर को ही स्वयं करना पड़ता था, जिसका परिणाम यह होता था कि दलाली में उसका रुपया नष्ट नहीं होता था, प्रत्युत सबका सब उसे ही मिलता था। कारीगर एक स्वतंत्र प्रतिष्ठित नागरिक होता था। एक-दो शताब्दियों में इस प्रणाली में यह परिवर्तन आया कि विक्री का काम हर एक धंधे की पंचायत के हाथ में आ गया। उन पंचायतों को श्रेणी कहते थे। धीरे-धीरे ये श्रेणियां इतनी शक्तिशाली हो गईं कि हर एक धंधे में मनुष्यों की संख्या निश्चित करना, उनकी बनाई हुई वस्तुओं के दाम का निर्णय करना, चेले तैयार करना और वस्तु के उत्पादन और बिक्री के लिए नियम बनाना, ये सब काम उनकी ओर से होने लग गए। परंतु चूंकि कारीगर ही श्रेणी को बनाते थे, इससे उनको वह कुछ हानि नहीं पहुँचा सकती थी, बल्कि कुछ लाभ ही होता था। इससे उनकी स्थिति में किसी प्रकार का अन्तर न आया। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में इस रिवाज का प्रभाव कम होने से, तथा जनसंख्या की वृद्धि से और धार्मिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सर्वप्रिय होने से श्रेणियों की शक्ति कम हो गई। अन्त में कारीगर और हाथ से काम करने-वाले श्रमजीवी फिर अपने भविष्य के पूर्ण स्वामी बनगए और वस्तुओं का बनाना पुराने ढंग से ही जारी रहा। एक परिवर्तन यह हुआ कि जहा वे पहिले अपना कच्चा माल और औज़ार लेकर वस्तुएँ बनाते और बेचते थे, वहाँ अब एक दलाल श्रेणी ऐसी पैदा हो गई, जिसका काम ही यह था कि कारीगरों और श्रमजीवियों को कच्चामाल और हथियार उनके घरो मे पहुँचावे और निर्धारित दाम पर, जो बाजार दामो से बहुत कम होता था, उनसे वस्तुएँ खरीद कर खुद बेचे।

औद्योगिक परिवर्तन और कृषि-सम्बंधी परिवर्तन की वृद्धि से यह अवस्था भी बदल गई। चूंकि यह परिवर्तन ऐसा था कि पुरानी प्रणाली बिलकुल नष्ट हो गई और उसके स्थान पर पुंजीपतियों की वर्तमान प्रणाली की नीवें पड़ीं, इसलिये इसको परिवर्तन या क्रांति युग कहते हैं।

कृषि मे इस जमाने मे जमींदार लोगों ने देहात की उपजाऊ जमीनो पर अपना-अपना अधिकार जमा कर चारों ओर चहारदीवारी लगा दी, जिससे किसानों के लिये चरागाह बन्द हो गईं। कृषिविद्या में जो नए ढंग सोचे गए, उनसे लाभ उठाने के लिये आवश्यक था कि छोटे-छोटे खेतो के स्थान पर बड़े-बड़े खेत हों। इसलिये जमींदारो ने निर्धन किसानों से जमीनें छीन लीं और खरीदनी आरम्भ कर दीं। इन बातों का परिणाम यह निकला कि अगणित किसान दरिद्र और निर्धन होकर, गाँव छोड़-छोड़ कर नगरो मे आ बसे। यह कृषि-संबंधी परिवर्तन का तत्कालिक प्रभाव था।

औद्योगिक परिवर्तन ने औद्योगिक क्षेत्र मे वैसा ही परिवर्तन पैदा कर दिया। औजार का स्थान मशीन ने ले लिया और मशीन को चलाने के लिये स्टीम और पानी की शक्ति की आवश्यकता थी। इसलिये यह बात अनिवार्य हो गई कि मशीन किसी ऐसे स्थान पर लगाई जावे, जहां जलशक्ति, कोयला और लोहा मिल सके। घरेलू प्रणाली अब काम नहीं दे सकती थी। जहाँ श्रमजीवी पहिले अपने घर में काम कर लेता था, अब उसके लिये आवश्यक था कि वह कारखाने मे काम करे। घर का स्थान अब कारखाने ने ले लिया और धीरे-धीरे देहात से भागे हुए पददलित किसान और शहर के कारीगर और श्रमजीवी, जिनको घर मे काम नहीं मिलता था, कारखानों मे नौकर होने प्रारम्भ हो गए। यह वह

काल था, जिसको हम औद्योगिक युग मे सबसे कलंकित काल कह सकते हैं। श्रमजीवियों की अवस्था अकथनीय थी। छोटी-छोटी आयु के बच्चे और स्त्रियाँ निर्वाह के लिये कारखानों में कौड़ियों के बदले बारह-चौदह घंटे काम करती थीं। तंग-सड़ी हुई कोठरियों में दैनिक बीस-तीस आदमियो को निर्वाह करना पड़ता था और स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे एक ही कमरे में रहने के लिये विवश होते थे, जिससे उनकी लज्जा और विनय बिलकुल नष्ट हो जाता था।

इस प्रकार पूंजीपति और कारखानों के स्वामी अपने अधीन श्रमजीवियों के परिश्रम से लाखों रुपए कमाने लगे। श्रमजीवी के प्रति उनके भावो का पता इस बात से चलता है कि अंगरेजी में श्रमजीवी को अब तक 'हाथ' कहते हैं। कारखाने का स्वामी यह कभी समझ ही नहीं सकता था कि वे भी जीवित जागृत मनुष्य हैं। वह उनको केवल काम करनेवाला 'हाथ' समझता था।

जब श्रमजीवियों ने इस असहाय अवस्था से पीड़ित होकर ट्रेड यूनियन (व्यवसाय-संघ) बनाने का प्रयत्न किया, तब कारखानेदारों की ओर से इकट्ठे होने के नियम पास किए गए, जिन के अनुसार यूनियन बनाना अपराध ठहराया गया और इस अपराध पर कठोर-से-कठोर दण्ड, यहाँतक कि फाँसी भी, नियत की गई।

यह समय था, और यूरोप, और विशेषकर इङ्गलैंड के श्रमजीवीवर्ग की यह अवस्था थी जब साम्यवाद की नींव पड़ी। कई एक पढ़े-लिखे दयालु विद्वानो ने ऐसे औद्योगिक युग का वार विरोध करना आरम्भ कर दिया, जिसमें श्रमजीवियों को मनुष्य नहीं समझा जाता था और जहाँ सबका सब मुनाफा पूंजीपतियों के पास चला जाता था। चूंकि किसी समय की औद्योगिक प्रणाली का तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रणालियों के साथ घनिष्ट सम्बंध होता है, इसलिये धीरे-धीरे साम्यवादी समाज

की हर-एक संस्था का विरोध करने लगे। वे अपने विचारानुसार नई-नई स्कीमे सोचने लग पडे, जिनके अनुसार चलने से ही श्रमजीवीवर्ग और समाज का कल्याण हो सकता था। कई के विचार तो बहुत ही हास्यजनक थे। कई स्कीमे अत्यन्त लचर थीं और सारी प्राय असाध्य। इसलिये पहिले साम्यवादियों को काल्पनिक साम्यवादी कहते है। उनमें से कुछ प्रसिद्ध नेताओं के नाम ये थे —रावर्ट ओवन, टामसपेन, फोरयर और सेन्ट साइमन। पहिले दो अगरेज थे और अन्तिम दो फ्रासीसी। यद्यपि उनकी स्कीमे लचर या असाध्य थीं, परंतु उनके जायदाद, दायभाग, मुनाफे और पूंजीपतिवर्ग के संबंध में जो विचार थे वे बहुत सारपूर्ण थे। उनका विचार था कि मनुष्य स्वभाव से धर्मात्मा होते हैं, परंतु उनकी धार्मिक प्रकृति व्यक्तिगत सम्पत्ति, मजहब और विवाह की प्रथा से नष्ट हो जाती है। इसलिये वे चाहते थे कि इन तीनो संस्थाओ को समाज से उड़ा दिया जाय।

साइमन के विचारानुसार व्यक्तिगत संपत्ति चोरी का माल है और चोरी करने से या श्रमजीवियों को लूटने से उसकी नींव पड़ी है। उदाहरण के लिये यदि १० श्रमजीवि पूंजीपति को पांच जोडे बूटों के बनाकर देते हैं, और यदि वह बूटों को पांच रुपए प्रति जोड़े के हिसाब से बेच देता है, परंतु श्रमजीवी को एक रुपया प्रति जोड़ा देता है, तो उसने प्रति जोड़ा चार रुपए की चोरी की है। इस प्रकार दिन-दहाड़े की लूट से वह व्यक्तिगत सम्पत्ति जोड़ने में सफल हो जाता है। समाज को भूमिपति होना चाहिए और समाज को ही खेती का प्रबन्ध भी करना चाहिए। जायदाद संतान को कभी दायभाग मे नहीं मिलनी चाहिए। इससे न केवल संतान स्वयं कमाना न सीखकर आलसियों और निकम्मों की संख्या को बढ़ाती है, प्रत्युत प्राकृतिक पादार्थों और सम्पत्ति से समाज को

उचित लाभ नहीं पहुँचता। उदाहरण के लिये यदि किसी मनुष्य को बहुत उपजाऊ भूमि दायभाग में मिली है और स्वयं उसको खेती करने या कराने की रुचि भी नहीं है तो उसकी जमीन की उपज बहुत कम हो जायगी और समाज के लिये अनाज कम परिमाण में पैदा होगा। यदि दायभाग की प्रणाली न हो और जमीन राज्य की ओर से ऐसे मनुष्यों को दी जाय जो अत्यंत योग्य किसान हों, तो देश को बहुत लाभ होगा। इन विचारों का उन्नीसवीं सदी में बहुत प्रचार हुआ और बड़े-बड़े दार्शनिक, आगस्ट-कामट जैसे, सेन्ट साइमन के विचार से प्रभावित हुए बिना न रह सके। परन्तु विवाह के संबंध में उनके विचार उनके पतन का कारण हुए।)

इन पहिले साम्यवादियों के संबंध में जो विशेष बात कही जा सकती है, वह यह है कि वे सामाजिक और शिक्षा-संबंधी सुधारों से समाज की अवस्था को उच्च करना चाहते थे। वे क्रांतिवादी न थे और न पूंजीपति और अधिकारीवर्ग के कट्टर विरोधी ही थे। किन्तु वे अधिकारीवर्ग की सद्भावना और सहानुभूति से श्रमजीवियों की अवस्था सुधारना चाहते थे। ओवन स्वयं एक

साम्यवादी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध जन्मदाताओं में लुईस ब्लैंक और प्रौधन मुख्य थे।

लुईस ब्लैंक के मतानुसार सब मनुष्य समान और परस्पर भाई है। इस बात पर जोर देता हुआ वह यह बात सिद्ध करता है कि समाज मे वेतन या प्रतिफल मनुष्य के काम के अनुसार नहीं प्रत्युत उसकी आवश्यकतानुसार मिलना चाहिए। हरएक को अपनी सामर्थ्य के अनुसार परिश्रम करना चाहिए। ऐसा करने से सबकी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाएगी और किसी को शिकायत न रहेगी। वह इस प्रकार के समाजाधीन कारखानो के पक्ष में था, जिनमें श्रमजीवी शारीरिक और मानसिक योग्यता के अनुसार जितना काम कर सकते हो, करें और मजदूरी उनको अपनी आवश्यकतानुसार मिला करे। ये कारखाने गवर्नमेंट की ओर से चलाए जाने चाहिए। १८४८ की क्रांति के अवसर पर पेरिस मे थोडे समय के लिये इस प्रकार के कारखाने खोलने में लुईस ब्लैंक को सफलता भी प्राप्त हुई।

प्रौधन एक प्रकार का अराजकवादी था। जमींदार और धनी लोग जो अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति के पक्ष मे यह युक्ति देते हैं कि वे अपने परिश्रम से अपनी सम्पत्ति जोड़ते हैं, उनके विरुद्ध प्रौधन की यह युक्ति है कि यदि श्रम से जायदाद रखने का अधिकार मिलता हो, तो जब एक श्रमजीवी एक धनी मनुष्य के बगीचे में काम करता है, तो उस श्रमजीवी का उस बगीचे पर अधिकार क्यों न मान लिया जाय। प्रौधन इस बात के भी विरुद्ध था कि सिक्का विनिमयसाधन के रूप मे प्रचलित किया जाय। वह चाहता था कि विनिमय बैंक देश मे स्थापित किए जाएँ, जहाँ लोग मजदूरी के नोट, जिसपर जितने घंटे उन्होंने काम किया हो लिखे हों-लेकर जायँ

और इनके बदले इनकी जीवन की सब आवश्यकताएँ पूर्ण की जायँ।

साम्यवाद की यह अवस्था भी स्थिर न रह सकी और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे कार्ल मार्क्स ने, जो जर्मनी का रहनेवाला एक यहूदी था, इस जंगी साम्यवाद की नींव रखी, जिसको उसके अनुगामी अभिमान से वैज्ञानिक साम्यवाद कहते हैं। एञ्जल, लैस्सेल और अमरीका मे हेनरी जार्ज, इन तीनों ने मार्क्स के विचारो का प्रचार करने में बहुत भारी भाग लिया। मार्क्स के साम्यवाद में यह विशेषता थी कि उसमें वर्तमान औद्योगिक प्रणाली के विरुद्ध कोई गाली-गलौच, यहाँ तक की टीका-टिप्पणी भी नहीं की थी। पूंजीपति की प्रशंसा की गई है कि उसने एक ऐतिहासिक युग मे आवश्यक सेवाएँ की हैं। अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को भी दुतकारा नहीं गया। कार्ल मार्क्स ने अपनी विचार-शृङ्खला के लिये रिकाडो के सिद्धांतों का आश्रय लिया है। वर्तमान औद्योगिक प्रणाली को बुरा न कहने पर भी वह वर्तमान पूंजीवाद को सबसे अधिक बदनाम करने मे सफल हुआ है। उसने शक्तिपूर्वक तर्क, इतिहास और सत्य घटनाओं के द्वारा पूंजीवाद का इस प्रकार खाका खींचा है और विश्लेषण किया है कि पूंजीपति स्वयं ही पाठक की दृष्टि में घृणित चमगादड़ की तरह दिखाई देते हैं, जिसका अंत शीघ्र ही होनेवाला है।

कार्ल मार्क्स के साम्यवाद मे एक और विशेषता यह है और वास्तव में यही उसके साम्यवाद का विशेष चिन्ह भी है कि उसमें श्रमजीवियों के अतिरिक्त और किसी के लिये स्थान ही नहीं है। कार्ल मार्क्स का साम्यवाद दरिद्रों का साम्यवाद है। कार्ल मार्क्स से पहिले साम्यवादी वर्तमान सम्पत्तिविभाग के विरुद्ध आन्दोलन करते और न्याय चाहते थे। कार्ल मार्क्स ने श्रमजीवी और पूंजीपति में परस्पर युद्ध की घोषणा की है। वह निर्धन और अमीरों में

घरेलू युद्ध का प्रचार करता है। उसकी आवाज वर्गसंग्राम (क्लास वार) है। यही सिद्धांत है, जिससे कार्ल मार्क्स के विचार संसार के श्रमजीवियों में सर्वप्रिय हो गए। और जो उन विचारों को समाज की शान्ति के लिये अत्यन्त भयानक बनाता है।

कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की तीसरी विशेषता यह है कि उसका उद्देश्य संसार भर के अमीरों और गरीबों को एक झंडे के नीचे करना है। वह देशों का भेद-भाव नष्ट करना चाहता है। वह लोगों में जर्मन, रूसी, अंग्रेज़ और फ्रान्सीसी आदि का अन्तर नहीं करना चाहता, प्रत्युत अमीर, और गरीब का और पूंजीपति और श्रमजीवीवर्ग का ही करता है।

अंग्रेज श्रमजीवी और निर्धन मनुष्य को रूसी श्रमजीवी और निर्धन मनुष्य के साथ कोई द्वेष नहीं होना चाहिए। दोनों दरिद्र हैं और दोनों ही पूंजीपति के अत्याचारों से पीड़ित हैं। इसलिये उनको परस्पर मेल करके शत्रु का मुक़ाबिला करना चाहिए।

कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की इन विशेषताओं का वर्णन करके हम उसके पूंजीवाद के अन्त के संबंध में जो विचार हैं, उनका संक्षेप से वर्णन करना चाहते हैं। कार्ल मार्क्स व्यवसायिक इतिहास पर दृष्टि दौड़ाता हुआ लिखता है कि प्राचीनकाल में, जब दस्तकारी की घरेलू प्रणाली प्रचलित थी, उद्योग धंधों पर कई लोगों का स्वामित्व था। हर एक घर उद्योग धन्धों का एक छोटे से प्रमाण पर केन्द्र था। श्रमजीवी और स्वामी एक ही मनुष्य होता था। परन्तु औद्योगिक परिवर्तन ने घरों की जगह कारख़ाने स्थापित कर दिए और कारीगर लोग वहाँ काम करने लग पड़े। जहां पहिले लाखों मनुष्य छोटे-छोटे प्रमाण पर पूंजीपति थे, अर्थात् उद्योग-धन्धों के स्वतंत्र स्वामी होते हुए उनमें लगे हुए थे। अब उनका स्थान कुछ हजार बड़े-बड़े पूंजीपतियों ने ले लिया। जिनमें आजकल

बहुत मुकाबला है। इस तीव्र मुकाबले से छोटे-छोटे सब कारखाने नष्ट हो रहे हैं और उनका स्थान बड़े-बड़े कारखाने ले रहे हैं। उद्योग-धन्धों के चलाने की बागडोर भी धीरे-धीरे कुछ मनुष्यों (डाइरेक्टर इत्यादि) के हाथ में चली गई है, जिसका परिणाम यह निकल रहा है कि सब देशों में ऐसे दल बन रहे हैं, जिनमें एक ओर लाखों श्रमजीवी इकट्ठे होकर काम करते हैं और दूसरी ओर एक या दो डाइरेक्टर या स्वामी उनकी देखभाल में लगे हुए हैं। इसलिये जब भी श्रमजीवीवर्ग पीड़ित होकर क्रान्ति करने पर उतारू होंगे, उनके लिये काम बहुत ही सरल होगा कि सारा कारखाना तुरंत ही उनके हाथ में आ जाएगा और वे उनके स्वामी बन जाएंगे। इस प्रकार वर्तमान पूंजीपतियों का अन्त शान्तिपूर्वक स्वयं कुछ वर्षों में ही हो जायगा। पूंजीपतियों के सर्वनाश की सामग्री उन्हीं के पास है।

कार्ल मार्क्स का इतिहास के सम्बन्ध में विचार है कि उसका आधार आर्थिक आवश्यकताएं हैं। अर्थात् सब सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक संस्थाएं किसी-न-किसी आर्थिक आवश्यकता को पूरा करने के लिये ही चलाई गई हैं। इसलिये वह मानवी और आध्यात्मिक भावों को भिन्न स्थान देने के लिये तैयार नहीं है।

करते हैं। जब रूसी फौज मे विद्रोह हुआ, तो मेनशेविक दल ने शासन की बागडोर अपने हाथ मे ले ली। परन्तु चूंकि मित्रराष्ट्रों के प्रभाव के नीचे होने से वे युद्ध को जारी रखना चाहते थे, यद्यपि सारे रूसी फौज और किसान युद्ध से तंग आ गए थे, इसलिये फौज ने विद्रोह किया और वह बोलशेविकों के पक्ष में हो गई। इससे वे राज-काज संभालने मे सफल हो गए। मित्रराष्ट्रों के अगणित प्रयत्न करने पर भी वे रूस मे अपनी प्रतिष्ठा जमाए हुए हैं। अस्तु, हमे यहाँ राजनीतिक इतिहास का वर्णन नहीं करना है। यहाँ हमे केवल यही बताना है कि बोलशेविज़्म कोई नई वस्तु या तत्व नहीं है। कार्ल मार्क्स के साम्यवाद का क्रियात्मक रूप देने का यह केवल प्रयत्नमात्र है और यह मानना ही पडेगा कि साम्यवाद के बहुत-से सिद्धांतो को क्रियात्मक जीवन में लाने में बोलशेविकों को रूस मे बहुत सफलता प्राप्त हुई है। रूस की सब भूमि गवर्नमेन्ट का स्वामित्व ठहराई गई है और किसानो के बीच में खेती बाँट दी गई है। कारखानो के स्वामी, विलासिता का जीवन व्यतीत करनेवाले एक-दो रूसी नहीं, प्रत्युत उनमें काम करनेवाले और दिन-रात पसीना बहानेवाले श्रमजीवी अब मुनाफे के अधिकारी है। वे अब देश के सेवक हैं, किसी व्यक्ति विशेष के नहीं।

श्रीमन्तवर्ग और मध्य श्रेणी के लोग, जो अब तक राज्य करते रहे हैं, अब निर्धन श्रमजीवीवर्ग के दास बने हुए हैं या देश छोड़कर भाग गए हैं। कार्ल मार्क्स के वर्गसंग्राम के सिद्धान्त पर पूर्ण आचरण किया गया है। रूसियों का युद्धनाद—'सब देशो के श्रमजीवियों! मिल जाओ'—जहाँ भी बोला जाता है पूँजीपति के विचारकोण से हानिकारक सिद्ध होता है। बोलशेविकों का दावा है कि यदि श्रमजीवी और सिपाही उनकी शिक्षा से परिचित हो जायँ, तो वे कभी भी पूंजीपतियों के चंगुल मे फंसकर, दूसरे

देशों के श्रमजीवी और सिपाही भाइयों का गला काटने के लिये तैयार न होंगे, क्योंकि उनका परस्पर कोई द्वेष नहीं है। द्वेष वास्तव में भिन्न-भिन्न देशों के पूंजीपतियों में है। उन्हीं का साम्राज्यवाद इस महायुद्ध का कारण है। इसलिये जब तक पूंजीवाद का वर्तमान ढंग समाज में प्रचलित रहेगा, युद्ध बंद नहीं हो सकता। वे वर्तमान यूरोपियन युद्ध की ओर इशारा करते हैं और कहते हैं, देखो यूरोप के मदान्ध साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियों ने आपस में युद्ध की घोषणा की। 'देश सङ्कट में है। जाति तुम्हारे आत्मदान को चाहती है।' इत्यादि उत्साह-जनक शब्दों की आवाज से उन्होंने श्रमजीवीवर्ग को धोखे में डालने का प्रयत्न किया। निर्धन, निर्दोषी और अपढ़ किसानों और श्रमजीवियों को, उनके घरों से निकालकर फौज में भरती करके कसाईखाने में मरने-कटने के लिये भेज दिया गया, ताकि वे जाति के लिये चारे का काम दें। वहाँ उन्होंने एक दूसरे के गले काटे और कटवाए। लाखों नन्हें-नन्हें बाल-बच्चों को यतीम और स्त्रियों को असहाय करके वे रणक्षेत्र में काम आए, लाखों अपने अंगों को तोड़कर बेकार घर बैठे हुए हैं और हजारों को कैद की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं। इस नरमेध का परिणाम क्या निकला? यही कि एक देश के पूंजीपति दूसरे देशों के पूंजीपतियों से तेल के चश्में, उपनिवेश और खानें लेने में सफल हो गए।

कहते हैं। जब रूसी फौज में विद्रोह हुआ, तो मेनशेविक दल ने शासन की वागडोर अपने हाथ में ले ली। परन्तु चूंकि मित्रराष्ट्रों के प्रभाव के नीचे होने से वे युद्ध को जारी रखना चाहते थे, यद्यपि सारी रूसी फौज और किसान युद्ध से तंग आ गए थे, इसलिये फौज ने विद्रोह किया और वह वोलशेविकों के पक्ष में हो गई। इससे वे राज-काज संभालने में सफल हो गए। मित्रराष्ट्रों के अगणित प्रयत्न करने पर भी वे रूस मे अपनी प्रतिष्ठा जमाए हुए हैं। अस्तु, हमे यहाँ राजनीतिक इतिहास का वर्णन नहीं करना है। यहाँ हमें केवल यही वताना है कि वोलशेविज़्म कोई नई वस्तु या तत्व नहीं है। कार्ल मार्क्स के साम्यवाद का क्रियात्मक रूप देने का यह केवल प्रयत्नमात्र है और यह मानना ही पडेगा कि साम्यवाद के वहुत-से सिद्धातों को क्रियात्मक जीवन में लाने में वोलशेविकों को रूस में वहुत सफलता प्राप्त हुई है। रूस की सव भूमि गवर्नमेन्ट का स्वामित्व ठहराई गई है और किसानों के वीच में खेती वाँट दी गई है। कारखानो के स्वामी, विलासिता का जीवन व्यतीत करने-वाले एक-दो रूसी नहीं, प्रत्युत उनमें काम करनेवाले और दिन-रात पसीना वहानेवाले श्रमजीवी अव मुनाफे के अधिकारी है। वे अव देश के सेवक हैं, किसी व्यक्ति विशेष के नहीं।

श्रीमन्तवर्ग और मध्य श्रेणी के लोग, जो अब तक राज्य करते रहे हैं, अव निर्धन श्रमजीवीवर्ग के दास वने हुए हैं या देश छोड़कर भाग गए हैं। कार्ल मार्क्स के वर्गसंग्राम के सिद्धान्त पर पूर्ण आचरण किया गया है। रूसियों का युद्धनाद—'सव देशो के श्रमजीवियों! मिल जाओ'—जहाँ भी वोला जाता है पूँजीपति के विचारकोण से हानिकारक सिद्ध होता है। वोलशेविकों का दावा है कि यदि श्रमजीवी और सिपाही उनकी शिक्षा से परिचित हो जायँ, तो वे कभी भी पूंजीपतियों के चंगुल में फंसकर, दूसरे

देशों के श्रमजीवी और सिपाही भाइयों का गला काटने के लिये तैयार न होंगे, क्योंकि उनका परस्पर कोई द्वेष नहीं है। द्वेष वास्तव में भिन्न-भिन्न देशों के पूंजीपतियों में है। उन्हीं का साम्राज्यवाद इस महायुद्ध का कारण है। इसलिये जब तक पूंजीवाद का वर्तमान ढंग समाज में प्रचलित रहेगा, युद्ध बंद नहीं हो सकता। वे वर्तमान यूरोपियन युद्ध की ओर इशारा करते हैं और कहते हैं, देखो यूरोप के मदान्ध साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियों ने आपस में युद्ध की घोषणा की। 'देश संकट में है। जाति तुम्हारे आत्मत्याग को चाहती है।' इत्यादि उत्साह-जनक शब्दों की आवाज़ से उन्होंने श्रमजीवीवर्ग को धोखे में डालने का प्रयत्न किया। निर्धन, निर्दोषी और अपढ़ किसानों और श्रमजीवियों को, उनके घरों से निकालकर फौज में भरती करके कसाईखाने में मरने-कटने के लिये भेज दिया गया, ताकि वे जाति के लिये चारे का काम दें। वहाँ उन्होंने एक दूसरे के गले काटे और कटवाए। लाखों नन्हे-नन्हे बाल-बच्चों को यतीम और स्त्रियों को असहाय करके वे रणक्षेत्र में काम आए, लाखों अपने अंगों को तोड़कर बेकार घर बैठे हुए हैं और हज़ारों को क़ैद की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं। इस नरमेध का परिणाम क्या निकला? यही कि एक देश के पूंजीपति दूसरे देशों के पूंजीपतियों से तेल के चश्में, उपनिवेश और खानें लेने में सफल हो गए। निर्धन वैसे-के-वैसे ही रहे और दासता की बेड़ियों से अपने आपको और भी दृढ़ता से जकड़ लिया। क्या राइन के तट पर रहनेवाले [illegible] किसान को [illegible] निवासी निर्धन फ्रांस से कोई द्वेष था कि [illegible] ने फ्रांस को गोली मारकर उसके बच्चे को अनाथ, उसकी स्त्री को विधवा और उसके बूढ़े पिता को जीवित ही मृतप्राय कर डाला।

संसार के हर-एक भाग के रहनेवाले निर्धनों और श्रमजीवियों

के लिये बोलशेविज़्म की यही शिक्षा है कि पूंजीपतियों के उन्मूलन में ही संसार की मुक्ति है। उसके प्रभाव का अनुमान वही लोग लगा सकते हैं, जिनके हृदय में दरिद्रों के साथ सहानुभूति है या जिनको उनके दुःखों का कुछ ज्ञान है।

बोलशेविज़्म मे धर्मविरुद्ध कोई बात नहीं है। परंतु चूंकि संसार के इतिहास मे पूंजीपतियों और श्रीमन्तवर्ग ने धर्म का नाम लेकर निर्धनों को दासता की शृंखला में जकड़ने के लिये निरंतर प्रयत्न किया है। इसलिये बोलशेविक धर्म का सन्देह की दृष्टि से देखते है। गिरजों पर अधिकार जमाना और पूंजीपति-वर्ग के सहायक और वास्तव मे उनके संबंधी पादरियों को वहाँ से निकालने का काम इसलिये बोलशेविक लोगों ने राज्य की बागडोर हाथ मे लेते ही, तुरंत करना आवश्यक समझा।

[धर्म की आड़ किस प्रकार पूंजीपतिवर्ग ने ली, इसकी व्यख्या बोलशेविक लोग इस प्रकार करते हैं। जब पूंजपतियो ने देखा कि उनके पास संपत्ति है और वे संख्या मे बहुत थोडे हैं और इस अवस्था मे वे अपने स्वार्थ की रक्षा नहीं कर सकते, तो जहाँ उन्होंने अपनी जायदाद की रक्षा के लिये कठोर क़ानून बनाए और अपराधियों को कड़े दंड देकर अपने वश मे करना आरंभ किया, वहाँ उन्होंने धर्म का आश्रय लेना भी आवश्यक समझा, क्योंकि क़ानूनी आज्ञाएं केवल क़ानून के भय से, स्थायी नहीं हो सकतीं। समाज मे यदि अधिकांश लोग शान्तिप्रिय और नियम भंग करनेवाले नहीं हैं, तो इसका कारण यह नहीं कि वे दंड के भय के कारण शांतिप्रिय हैं। उनकी शांतिप्रियता का कारण उनकी नैतिक शिक्षा और धार्मिक और आध्यात्मिक भाव हैं। इसलिये पूंजी-पतियों ने जो नियम अपनी रक्षा के लिये बनाए उनका समर्थन कराने के लिये ईश्वर का एक ढोंग रचा और उसकी ओर से भी

ये बातें कहलाई गईं—'चोरी करना पाप है, दूसरे की सम्पत्ति छीनना पाप है" इत्यादि। निर्धनों को एक दूसरे से तो माल छीनना ही नहीं है, उनके पास रखा ही क्या है। इसलिये इन उपदेशों का इसके अतिरिक्त और कोई अभिप्राय नहीं हो सकता कि पूंजीपतियों और श्रीमन्त लोगों को मत लूटो, भूखे बेशक मर जाओ! दरिद्रों को संतुष्ट करने के लिये उनको बताया गया कि अमीरों और गरीबों की आत्मा एक है, सब बराबर हैं और स्वर्ग सुख गरीबों को मिलेगा। निर्धन श्रमजीवी, जो दिनरात दौड़धूप करके भी, अपने नन्हे नन्हे बच्चों का पेट नहीं भर सकता, अपने सम्मुख, आराम से खाने पहनने वाले सुंदर महलों में रहते हुए अमीरों को, दावतें उड़ाते देखता है, उसके मन में क्षण भर के लिये द्वेष और क्रोध का मिश्रित भाव उत्पन्न होता है, परंतु धार्मिक उपदेश को स्मरण करके वह शांत हो जाता है। वह प्रायः इस उपदेश से प्रसन्न हो जाता है कि भावी जन्म में वह आनन्द लूटेगा और ये धनी लोग स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।

उपलब्धि की हुई स्वतंत्रता की तरंग में, हर प्रकार के बंधनों को तोड़ने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाय। जब फ्रांस में १७८९ में क्रांति हुई, तब भी इस प्रकार के विचार ज़ोरों पर थे।)

साम्यवाद के प्रकरण को समाप्त करने से पहिले हम यूरोप में प्रचलित एक और आंदोलन का वर्णन भी करना चाहते हैं, जिसका सम्बन्ध लोग गलती से साम्यवाद के साथ जोड़ते हैं और जिसे वे उसी की शाखा समझते हैं। हमारा अभिप्राय अराजक-वाद से है। अराजकवाद के जन्मदाता प्रिंस कपाटकिन और बेकोनिन हुए हैं। इंगलैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर भी अराजकवादी थे।

साम्यवाद और अराजवाद में बहुत भारी अंतर है। साम्यवादी लोग तो यह चाहते हैं कि समाजसुधार के लिये, वर्तमान वैयक्तिक प्रयत्नों को छोड़कर सब काम गवर्नमेंट को करना चाहिए। संपत्ति का स्वामित्व व्यक्ति का नहीं, प्रत्युत समाज का होना चाहिए इत्यादि। परंतु अराजकवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र होना चाहिए। फ़ौज, पुलीस और गवर्नमेंट का प्रत्येक देश मे अंत हो जाना चाहिए; क्योंकि किसी को अधिकार नहीं कि दूसरे को काम करने के लिये बाध्य करे। एक अराजकवादी का कहना है कि सबसे बड़ा सुधार जो एक गवर्नमेंट कर सकती है वह, यह है कि वह अपना अंत कर ले। फौज, और गवर्नमेंट को समाज मे आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि अपराधियों को दंड दिया जाय और बुराई दूर की जाय। परंतु अनुभव बतलाता है कि गवर्नमेंट का लोगों के जीवन में जितना हाथ बढ़ता जाता है, उतना ही समाज मे पाप भी बढ़ता जाता है। बुराई को दूर करने की अपेक्षा बुराई को पैदा ही न होने देना अच्छा है। ऐसा करने का सरल उपाय यही

है कि पहिले इस बढ़ी हुई बुराई को ही दूर किया जाय जो देश में गवर्नमेंट के रूप मे विद्यमान है। दूसरा उपाय यह है कि हर मुहल्ला और गली मे स्वतंत्र पंचायतें स्थापित की जायं जो अपने मुहल्ले या गली में सामाजिक कल्याण के सब काम करे। सेन्ट्रल कमेटी या गवर्नमेंट नहीं होनी चाहिए।

अराजकवाद की शिक्षा का यह परिणाम निकला है कि यूरोप में एक दल इस प्रकार का भी बन गया है जो सरकारी कर्मचारियों, पुलिस, फौज के आदमियों को हर संभव उपाय से कत्ल कर देना अपना पवित्र कर्तव्य समझता है। यह सब-कुछ वह किसी व्यक्तिगत या राजनैतिक पक्षपात से नहीं करता, प्रत्युत संसार से बुराई दूर करने के लिये करता है। हर एक मनुष्य को जिसका गवर्नमेंट के साथ संबंध है वह बुराई का प्रतिनिधि स्वरूप समझता है, जिसको कत्ल कर देने से वह बुराई को कुछ दर्जे कम करके अपना कर्त्तव्य पूरा करता है।

महात्मा गांधी की तरह रूस का प्रसिद्ध महात्मा टालसटाय भी अपने विचार मे अराजकवादी था। परंतु दूसरे अराजकवादियों से इसका यह मतभेद था कि वह हिंसा का कट्टर विरोधी था। वह अपना उद्देश्य अहिंसात्मक संग्राम से पूर्ण करना चाहता था।

साम्यवाद का वर्णन करते हुए हमने इङ्गलैंड की फेबियन सोसायटी और जर्मनी के राज्यपक्षपाती साम्यवादियों के विषय में कुछ नहीं लिखा। इनको साम्यवादियों में नरम दलवाले साम्यवादी समझना चाहिए। वे धीरे-धीरे सुधार करने के पक्षपाती हैं।

उपलब्धि की हुई स्वतंत्रता की तरंग में, हर प्रकार के बंधनों को तोड़ने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाय। जब फ्रांस में १७८९ में क्रांति हुई, तब भी इस प्रकार के विचार ज़ोरों पर थे।)

साम्यवाद के प्रकरण को समाप्त करने से पहिले हम यूरोप में प्रचलित एक और आंदोलन का वर्णन भी करना चाहते हैं, जिसका सम्बन्ध लोग गलती से साम्यवाद के साथ जोड़ते हैं और जिसे वे उसी की शाखा समझते हैं। हमारा अभिप्राय अराजक-वाद से है। अराजकवाद के जन्मदाता प्रिंस कपाटकिन और बेकोनिन हुए हैं। इंगलैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर भी अराजकवादी थे।

साम्यवाद और अराजवाद में बहुत भारी अंतर है। साम्यवादी लोग तो यह चाहते हैं कि समाजसुधार के लिये, वर्तमान वैयक्तिक प्रयत्नों को छोड़कर सब काम गवर्नमेंट को करना चाहिए। संपत्ति का स्वामित्व व्यक्ति का नहीं, प्रत्युत समाज का होना चाहिए इत्यादि। परंतु अराजकवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र होना चाहिए। फौज, पुलीस और गवर्नमेंट का प्रत्येक देश में अंत हो जाना चाहिए; क्योंकि किसी को अधिकार नहीं कि दूसरे को काम करने के लिये बाध्य करे। एक अराजकवादी का कहना है कि सबसे बड़ा सुधार जो एक गवर्नमेंट कर सकती है वह, यह है कि वह अपना अंत कर ले। फौज, और गवर्नमेंट को समाज में आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि अपराधियों को दंड दिया जाय और बुराई दूर की जाय। परंतु अनुभव बतलाता है कि गवर्नमेंट का लोगों के जीवन में जितना हाथ बढ़ता जाता है, उतना ही समाज मे पाप भी बढ़ता जाता है। बुराई को दूर करने की अपेक्षा बुराई को पैदा ही न होने देना अच्छा है। ऐसा करने का सरल उपाय यही

है कि पहिले उस बढ़ी हुई बुराई को ही दूर किया जाय जो देश में गवर्नमेंट के रूप मे विद्यमान है। दूसरा उपाय यह है कि हर मुहल्ला और गली मे स्वतंत्र पंचायतें स्थापित की जायं जो अपने मुहल्ले या गली में सामाजिक कल्याण के सब काम करे। सेन्ट्रल कमेटी या गवर्नमेंट नहीं होनी चाहिए।

अराजकवाद की शिक्षा का यह परिणाम निकला है कि यूरोप में एक दल इस प्रकार का भी बन गया है जो सरकारी कर्मचारियों, पुलिस, फौज के आदमियों को हर संभव उपाय से कत्ल कर देना अपना पवित्र कर्तव्य समझता है। यह सब-कुछ वह किसी व्यक्तिगत या राजनैतिक पक्षपात से नहीं करता, प्रत्युत संसार से बुराई दूर करने के लिये करता है। हर एक मनुष्य को जिसका गवर्नमेंट के साथ संबंध है वह बुराई का प्रतिनिधि स्वरूप समझता है, जिसको क़त्ल कर देने से वह बुराई को कुछ दर्जे कम करके अपना कर्त्तव्य पूरा करता है।

महात्मा गाँधी की तरह रूस का प्रसिद्ध महात्मा टालसटाय भी अपने विचार में अराजकवादी था। परंतु दूसरे अराजकवादियों से उसका यह मतभेद था कि वह हिंसा का कट्टर विरोधी था। वह अपना उद्देश्य अहिंसात्मक सग्राम से पूर्ण करना चाहता था।

साम्यवाद का वर्णन करते हुए हमने इङ्गलैंड की फेबियन सोसायटी और जर्मनी के राज्यपक्षपाती साम्यवादियों के विषय में कुछ नहीं लिखा। इनको साम्यवादियों में नरम दलवाले साम्यवादी समझना चाहिए। ये धीरे-धीरे सुधार करने के पक्षपाती हैं।



साम्यवाद के नाम से चौंकने की कोई ज़रूरत नहीं है। हमने साम्यवाद की ऊपर परिभाषा देदी है, जिससे नाना प्रकार के व्यक्ति अपने को जो साम्यवादी कहते हैं और नाना प्रकार की कारवाइयाँ साम्यवाद के अनुकूल वतलाते हैं, उनका ज्ञान स्पष्ट हो ही जायगा। साम्यवाद के संबंध मे बात करने मे एक और कठिनाई है कि कितने ही लोगों का ख्याल है कि सम्यवाद का अर्थ ग़रीबी है और साम्यवादी का गरीब होना आवश्यक है। (यहाँ 'गरीब' इसी अर्थ मे प्रयोग हुआ है जिसमे साधारण बोलचाल की भाषा मे वह प्रयोग किया जाता है, अर्थात् ऐसा पुरुष जो अन्न-वस्त्र के कष्ट में हो।) यदि कोई ऐसा पुरुष अपने को साम्यवादी कहे जो साधारण खाने-पीने से खुश हो, तो वह मक्कार समझा जाता है और यदि कोई इत्तिफाक से गरीब आदमी अपने को साम्यवादी वतलावे तो उसका यह कहकर मजाक उड़ाया जाता है कि अवश्य ही वह मुफ्त में दूसरों का धन चाहता है। मोटे तौर से साम्यवाद—वास्तव में इसे समाजवाद कहना चाहिए पर साम्यवाद शब्द की ही इतनी प्राण-प्रतिष्ठा हो गयी है कि इसको बदलना संभव नहीं है—मनुष्य

समाज के संघटन के सम्बन्ध की एक विचार-शैली है, जिसका मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तिभर कार्य करना चाहिए और उसकी आवश्यकता भर उसे मिलना चाहिए। साम्य-वादी का ख्याल है कि यदि इस सिद्धात पर काम हो, तो समाज का संघटन सुन्दर, सुदृढ़ और सदा स्थायी हो सकता है।

इस सिद्धांत मे पाठक देखेंगे कि बराबरी पर जोर नहीं किया जाता, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि सब लोग बराबर नहीं हैं। साथ-ही यदि पाँचों उंगलियाँ बराबर नहीं हैं, तो एक उंगली और दूसरी उंगली में गज-दो गज की लम्बाई-चौड़ाई का फर्क भी नही है। सबको ही अपने-अपने स्थान पर अपनी-अपनी शक्ति के अनु-सार काम करना पड़ता है और सबकी ही उचित आवश्यकताएं पूरी की जाती हैं। इस समय मनुष्य समाज के विकास ने एक गलत रूप धारण कर लिया है, जिसके कारण मनुष्य और मनुष्य मे बहुत बड़ा भेद हो गया है। धन बहुत थोड़े से हाथों में मर्यादित हो गया है। धन को ही सारी शक्ति और सारा सन्मान मिल गया है। धन ही सब-कुछ खरीद सकता है और धन द्वारा खरीदने की चीजें भी बहुत सी तैयार हो गयी हैं। ऐसी अवस्था में चन्द लोगों के हाथ मे बाकी सब भाइयों के ऊपर अनयाधिकार आ गया है। प्रकृति दोष से अधिकार का सदुपयोग कम होता है और दुरुपयोग ही अधिक होता है। भीषण स्थिति पैदा हो गयी है। भेदभाव सबसे बड़ा दोष है, यही ईर्ष्या, द्वेष का माता-पिता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर छहो रिपुओं का बीज इसी में है, जो मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं और करते रहते हैं। भेद ही मिटाने से ये दोष मिट सकते हैं। साम्यवाद इस घातक भेद को मिटाना चाहती है। वह सबको बराबर नहीं मानता। इसी वास्ते कहता है, अपने शक्ति भर सबको काम करना

चाहिए। इसका मतलब ही है कि भिन्न-भिन्न लोगों की शक्ति में अंतर है। और सब लोग एक ही प्रकार का और एक ही प्रमाण का काम भी नहीं कर सकते। वह सबको दाम भी बराबर नहीं देता। वह सबको कहता है कि अपनी आवश्यकतानुसार ले लो। भिन्न-भिन्न लोगों की आवश्यकताएं भी भिन्न भिन्न होती हैं। छोटा बच्चा कुछ नहीं करता, खाता बहुत है, दिक भी बहुत करता है। वयस्क काम काम बहुत कर सकते हैं, खाना भी कम खाते हैं। साम्यवाद कहता है अपनी शक्तिभर काम करो और अपनी आवश्यकतानुसार ले लो। यह बच्चों, वयस्कों और वृद्धों सबकी पूरी-पूरी और उपयुक्त व्यवस्था करता है।

लोग हंसकर कहेंगे—संसार के सब संकटों को मिटाने का क्या ही सुन्दर और सरल नुस्खा है। साथ ही वे गंभीर भाव से पूछेंगे-क्या इसके लिखनेवालों ने इसपर भी ध्यान दिया है कि मनुष्य किन वासनाओं से प्रेरित होकर काम करते हैं? उन वासनाओं की तृप्ति के लिये, कार्य करनेवाले के हृदय के आप्यायन के लिये भी कोई उपाय सोचा गया है। आधुनिक संसार में धन का ऐसा प्रबल प्रताप है कि साधारणतः लोगों ने यह सोच रखा है कि धन की लालच ही सब कामों को कराती है और अगर यह जीवन से निकाल दी जाय, तो कोई भी कुछ काम न करेगा। मनुष्य अपने काम का अपनी आवश्यकता से अधिक दाम चाहता है और जैसे-जैसे अधिक दाम मिलता जाता है, वैसे-वैसे उसकी बुद्धि की स्फूर्ति भी बढ़ती जाती है और वह नए-नए आविष्कारों से समाज की उन्नति में सहायता पहुँचाता है। इस कारण यथाशक्ति काम और यथा आवश्यकता दाम का सिद्धांत नहीं चल सकता। पर यदि विचार कर देखा जाय, तो इन शंकाओं को करनेवाले भी इस बात का अवश्य अनुभव करेंगे कि शायद ही कोई काम जो वास्तव में

लोकहित का हुआ होगा, धन की लालच से किया गया है। सुन्दर साहित्य, श्रेष्ठ कला, वैज्ञानिक आविष्कार सब प्रेम की प्रेरणा से ही हुए हैं। धन की लालच से इन्हें किसी ने नहीं किया। अधिकतर तो लोकहितैषी दरिद्र रहे हैं और इनमें-से जो धनी भी पैदा हुए हैं वे अपने को स्वयं दरिद्र ही बनाकर लोकहित कर पाए हैं। धन के लालच से जो काम हुए हैं, वे तो समाज के घातक ही रहे हैं, समाज के सहायक नहीं। धन की लालच से व्यापारी जुआचोरी, क़ानूनी कलाबाजी, निरीह और निर्दोष स्त्री-पुरुषों पर पाशविक आघात ही हुआ है। इसमे समाज की उन्नति कहाँ?

साम्यवाद इस अत्याचार को बंद करता है और ऐसे काम को ही दुनिया से हटा देता है, जिसमें धन की लालच से मनुष्य-मनुष्य को सताता है। वह इस दयनीय दृश्य को भी बंद करना चाहता है, जिससे उचित भोजन, वस्त्र, गृह से वंचित लोग अपना जीवन कला, साहित्य या विज्ञान की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं। वह इस बीभत्सता को भी दूर करना चाहता है कि धन के कारण किसी को बहुत अधिक मिले और अधिकतर लोगों को गरीबी के कारण कुछ भी न मिले। कुछ को आराम से ही फुर्सत न मिले और कितने ही काम मे इतने पिसे रहें कि उन्हें भोजन और निद्रा के लिये भी पूरा अवसर न मिले। हमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वर्तमान बृहत् भेदभाव बना रहा तो मनुष्य-समाज को रोष और असंतोष, द्वेष और घृणा से उत्पन्न ऐसी हिंसामय क्रांति का सामना करना पड़ेगा, जिसमें संभव है कि वह पूरे तौर से नष्ट ही हो जाय। साम्यवादी चाहते हैं कि मनुष्य के विचार में ही क्रान्ति हो जाय, जिससे कि तज्जनित समाज-व्यूहन यथासंभव कम कष्ट के साथ उचित प्रकार से हो जाय। यह बात भी स्मरण रखना चाहिए कि धन की लालच लोगों में इस कारण भी होती है कि आजकल उसी में

सम्मान है और उसी में शक्ति है और उसी में आमोद-प्रमोद के भी सब साधन है। यदि सार्वजनिक रूप से आमोद-प्रमोद की आयोजन हो जाय, यदि बिना धन के संमान और शक्ति मिल सके, तो उसकी लालसा भी कम हो जाय। साम्यवादी इसका प्रबन्ध करना चाहता है। वह विद्वानों को आदर-सत्कार, राज्य भार ढोने-वालों को शक्ति अधिकार देना चाहता है, पर वह व्यर्थ के ऐश-आराम, निरर्थक धनराशि इन्हें नहीं दे सकता। वह वेकारों की सेना, चाहे वे धनी हों चाहे दरिद्र हो, नहीं पाल सकता। वह सबको उपयुक्त शिक्षा देता है, सबसे उपयुक्त काम लेता है। सबको उपयुक्त दाम देता है और सबके आराम की व्यवस्था भी करता है। काम, दाम और आराम का समुचित समन्वय ही साम्यवाद है। इसी में सबको अपना-अपना जौहर दिखलाने का मौका मिल सकता है। इसीसे मनुष्य-समाज चिरकाल के लिये सुसघटित रह सकता है।

हम साधारण लोगों को, जो हर प्रकार की अनावश्यक राज-शक्तियों से डराए-धमकाए हुए हैं, जो अपने पेशो की अवनति से चिन्तित है, जो अपनी संतति की शिक्षा, विवाह जीविका आदि समस्याओं को हल करने मे विह्वल और व्याकुल हैं, उनके लिये साम्यवाद के सिद्धान्त पर स्थापित समाज-व्यूहन से बढ़कर कोई आश्रय ही नहीं है। हम काम चाहते हैं, हम मेहनत से भागते नहीं, हम आवश्यकता अधिक की लालसा नहीं रखते। हम पूछते हैं कि हमारे लिये व्यवस्था क्यो नहीं हो रही है। वर्तमान पूँजीवादी समाज हमारा सन्तोष नहीं कर सकता; क्योकि उसे हमारी आवश्यकता ही नहीं है। आजकल हमारे जो सम्मानित अधिकार प्राप्त धनी लोग हैं उनकी भी वास्तविक स्वार्थ-सिद्धि साम्यवाद मे ही है। उनके पास हर प्रकार का भोजन का प्रबन्ध होते हुए भी उनको वेकारी सताती है। उनसे समय काटा नहीं जाता। काल

काल की तरह उन्हें ग्रसता है। काम करने से ही समय घटता है। काम में जो आनन्द है उससे वे वञ्चित हैं। वे नानाप्रकार की आधियों और व्याधियों से पीड़ित रहते हैं, जिनसे न मुसाहिब न वैद्य उन्हे बचा सकते हैं। उनको चोरो, शत्रुओं, रिश्तेदारों, नौकरों आदि से सदा भय लगा रहता है। हजार यत्न करने पर भी वे संसार की छूत से नहीं बच सकते और उनका घर चाहे उनके धन के कारण कितना ही स्वच्छ और सुन्दर क्यों न हो, बालक के झोपड़ों मे पैदा हुई गरीबी की बीमारियाँ, वायु और जल, धोबी और हलवाई के द्वारा उनके पास अवश्य पहुँच कर अनर्थ करती है। उनका भी स्वार्थ इसी मे है कि सारा समाज उपयुक्त भोजन और वस्त्र, उपयुक्त शिक्षा, आमोद-प्रमाद तथा निवास-स्थानों से पूरित रहे, सभी अपने-अपने कामों को सुचारु रूप से करते रहें, सब ही स्वच्छ, स्वस्थ और प्रसन्न रहें, जिससे वे स्वयं भी यथा-संभव अनिवार्य कष्टों से सुरक्षित रहे। इस समय समाज के जितने अंग हैं उन सबको—पूंजीपतियों तक को—बावजूद उनके वैभव के—पूंजीवाद ने जर्जर कर रखा है। सब अंग, सब व्यक्ति, सब समूह, साम्यवाद में अपनी वास्तविक स्वार्थ की सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, व्यर्थ की परेशानी प्रतिद्वन्दिता रोष और द्वेष में जीवन न बिताकर हम सब सहयोग के साथ उपयोगी और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

———

३

कुछ लोगों का कहना है कि साम्यवाद अपने उत्पत्ति स्थान यूरोप आदि पाश्चात्य देशों में ही अब तक अपना सिक्का नहीं जमा सका है, तब भारतवर्ष में उसका प्रचार कैसे हो सकता है। उनकी दूसरी बात यह है कि इङ्गलैण्ड आदि देशों में प्रतिनिधि शासन पद्धति द्वारा यह संभव है कि एक मामूली आदमी भी अपनी उन्नति करते-करते प्रधान सचिव जैसे सर्वोत्कृष्ट ओहदे पर पहुँच सकता है, तब उससे साम्यवाद की यह माँग कि सबको अपनी-अपनी उन्नति करने का समान अवसर मिलना चाहिए, व्यर्थ हो जाती है।

साम्यवाद कोई नवीन आविष्कार नहीं है। वस्तुतः प्रजातंत्र शासन पद्धति भी उसका ही एक स्वरूप है। प्रजातंत्र शासनपद्धति राजनीति से जो समानता चाहती है वही समानता साम्यवाद अर्थनीति में चाहता है। उच्छृंखल स्वेच्छाचारी शासनपद्धति से साम्यवाद की तरफ जो प्रगति है, उसमें प्रजातंत्र शासनपद्धति बीच का स्थान रखती है। इतना ही नहीं, आजकल भारतवर्ष में हरिजनोद्धार संबंधी जो कार्य हो रहा है, वह भी साम्यवाद के

प्रचार का एक रूप है। हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई भी समानता ही प्राप्त करने की लड़ाई है, क्योंकि उसमें भी हम दूसरे देशों के लोगों की उचित बराबरी करने का दावा कर रहे हैं।

आज की नवीन परिस्थिति, जिसमें साम्राज्यवाद जमींदारों तथा पूंजीपतियो को अपना हिस्सेदार बना रहा है, बड़ी ही भयावह है। भारतीय स्वराज्य की लड़ाई में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि निम्न-मध्य श्रेणीवाले तथा जनसमूह का क्रियात्मक सहयोग स्थापित किया जाय। नियन्त्रित तथा संघटित कार्य करने के लिये जनसमूह के संघटन का कार्य देश का केवल शिक्षित वर्ग ही कर सकता है।

साम्यवाद का प्रयोग रूस मे किया जा चुका है और उसकी सफलता हमारे सामने मौजूद है। संसार में आज रूस ही एक देश है जहाँ बेकारी की समस्या नहीं है। रूस की पंचवर्षीय योजना की नकल संसार के अन्य देश भी कर रहे हैं। साम्यवाद का भारत में आगमन हो गया है और उसकी शक्ति प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यद्यपि हम स्वीकार करते हैं कि हम कांग्रेसवालों मे-से बहुत से 'केवल मानसिक' साम्यवादी हैं, किन्तु कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय संग्राम के कारण हमारा संबंध जनसाधारण से बहुत दिनों से अत्यन्त घनिष्ट रहा है। अत इसकी आशंका नहीं मालूम होती कि हमारा इतना पतन होगा कि हम केवल सिद्धान्तों की ही चर्चा करते रह जायँगे। हमें साम्यवाद को कट्टरपन तथा सांप्रदायिक रूप देने की गलती से बचना होगा। हमे वैज्ञानिक साम्यवाद को अपना आधार बनाना ही होगा तथा काल्पनिक साम्यवाद और सामाजिक सुधारवाद से अलग उसे रखना होगा।

हमारे देश की दशा ही कुछ और है। यहाँ के धनी रक्त मूढ़ हैं और विदेशी सत्ता के सहारे टिके हुए हैं। उनमे अपने में इतना

बल नहीं है कि वे साम्यवाद के प्रचार को रोक सकें। विदेशों के धनी अति प्रबल हैं, अतः वहाँ साम्यवाद को बड़ा जबरदस्त मोरचा लेना पड़ रहा है। हमारे देश में यन्त्रकला अभी उतनी उन्नत नहीं हुई है और विदेशों में यन्त्रकला की अति उन्नति ने ही वहाँ के धनियों की स्थिति मजबूत कर रखी है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष साम्यवाद के लिये विदेशों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त स्थान है।

साम्यवादी दल का उद्देश्य भारत में निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर एक साम्यवादी राज की स्थापना करने का है.—

१—उत्पादक जनता के हाथों मे सब अधिकार होंगे।

२—उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों का समष्टीकरण।

३—देश के आर्थिक जीवन का नियन्त्रण राज द्वारा होगा।

शक्ति प्राप्त होने पर भारतीय राज के लिये शासनपद्धति बनाने के लिये जो व्यवस्थापक महासमिति बैठेगी, उसके सामने यह दल निम्नलिखित प्रस्ताव रखेगा—

१—उत्पादक जनता के हाथों मे समस्त अधिकार सौंप देना।

२—श्रमिकों और किसानों को सभाओं द्वारा देश के आर्थिक जीवन का संचालन, ताकि राष्ट्रीय स्वाधीनता का उपयोग कुछ थोड़े से भाग्यवान व्यक्ति ही न करें।

३—राज द्वारा देश के आर्थिक जीवन का विकास।

४—मूल और प्रधान व्यवसाय (जैसे फौलाद, रूई, पाट, रेल जहाज और खान) बंक और सार्वजनिक उपयोग के साधनों का समष्टीकरण, ताकि क्रमशः उत्पादन, वितरण और विनिमय के सभी साधनो का समष्टीकरण हो जाय।

५—विदेशीय व्यापार पर राज का एकाधिकार।

६—आर्थिक जीवन के जो विभाग समष्टीकृत नहीं हैं, उनमे उत्पादन, वितरण और साख पर ऋण देने के लिये सहयोग समितियों का संघटन।

७—नरेशों और जमीदारों तथा इसी प्रकार के अन्य धनशोषकों का निष्कासन।

८—किसानों में जमीन का नए सिरे से बंटवारा।

९—अन्त में देश मे कृषि के एकीकरण के उद्देश्य से राज द्वारा सहयोग-युक्त और सम्मिलित खेती का प्रोत्साहन।

१०—श्रमिको और किसानों के बोझ का हल्का करना।

११—आर्थिक सामग्री के बंटवारे को यह निश्चित आधार हो कि प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार ही मिले।

१२—वोट पेशे के अनुसार होगा और यह अधिकार प्रत्येक पूर्णवयस्क व्यक्ति को प्राप्त होगा।

अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिये यह दल अन्य साधनों के अतिरिक्त इन साधनों से मुख्यतया काम लेना चाहता है—

१—भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अन्दर, उसके द्वारा दल के उद्देश्य और कार्यक्रम की स्वीकृति कराने के उद्देश्य से तत्परता से काम करना।

२—श्रमिकों और किसानों की प्रतिदिन की आर्थिक समस्याओ मे भाग लेने और स्वतन्त्रता और साम्यवाद की उपलब्धि के लिये एक शक्तिशाली जनान्दोलन की सृष्टि करने के उद्देश्य से किसानों और श्रमिकों की सस्थाओं का संगठन करना या ऐसी संस्थाएँ मौजूद हों, वहा उनमे सम्मिलित होना।

३—दल के कार्यक्रम की सिद्धि में सहायता प्राप्त करने के लिये युवक-संघ, महिला सस्था, स्वयंसेवक दल आदि का संघटन करना और इनमें सम्मलित होना।

४—समस्त साम्राज्यवादी युद्धों का सक्रिय विरोध और ऐसे अवसरों पर राष्ट्रीय युद्ध को और तीव्र बनाने के लिये उपयोग।

५—किसी दशा में स्वराज्य सम्बन्धी बातों के लिये बृटिश सरकार से सममौता करने से इनकार।

६—श्रमिकों और किसानों की आम हड़ताल।

७—राष्ट्रीय आन्दोलन के पथ की बाधक, सभी संस्थाओं और समूहों से सम्बन्ध-विच्छेद और बृटिश वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार।

१—प्रेस और भाषण की स्वतंत्रता।

२—सभासमिति बनाने की स्वतन्त्रता।

३—राष्ट्रीयता विरोधी और श्रमिक विरोधी तमाम कानूनों की मंसूखी।

४—बिना मुकदमा चलाए जो लोग कैद हैं, उन सबकी रिहाई।

५—राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपनी जमीन से बेदखल हुए समस्त कृषकों को पुनः उनकी ज़मीनें दिलाना।

६—निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा और प्रौढ़ों में-से निरक्षरता को एक दम दूर करना।

७—भारत सरकार के सैनिक व्यय में कम-से-कम पचास प्रतिशत की तात्कालिक कमी।

८—समस्त वक्फ और धर्म्मादा संपत्ति का नियन्त्रण।

९—सहायता प्राप्त या अन्य उपायों से रक्षित व्यवसायों का राज द्वारा नियन्त्रण और निरीक्षण।

१०—बंकों तथा मूल व्यवसायों का राज द्वारा नियमन और खानों पर राज का स्वाम्य।

११—सार्वजनिक उपयोग की सामग्रियों, जैसे बिजली या जल कल पर स्थानीय बोर्डों का स्वाम्य।

१२—विनिमय और मुद्रा नीति पर राज का पूर्ण अधिकार।

१३—प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सूदखोर का नियंत्रण।

१४—नीचे की एक निश्चित सीमा को छोड़कर सब आयों पर क्रम से बढ़ती हुआ करे। इसके अन्दर कृषि की आय भी शामिल है।

१५—क्रम वृद्ध मृत्युकर।

१—दासता या दासता से मिलती-जुलती अवस्था से श्रमिकों की मुक्ति।

२—संघ स्थापित करने, हड़ताल करने और पिकेटिंग करने का अधिकार।

३—मालिकों द्वारा श्रमिक संघों की अनिवार्य स्वीकृत।

४—उचित अर्थात् जीवनोचित पुरस्कार, ४० घंटों का सप्ताह तथा स्वास्थ्यप्रद रहने की जगहें और काम के नियम।

५—बेकारी, बीमारी, दुर्घटना, बुढ़ापा आदि का बीमा।

६—पूरे वेतन पर सब श्रमिकों को प्रतिवर्ष एक महीने की छुट्टी और वेतन पर स्त्री श्रमिकों को गर्भावस्था और मातृत्व में दो महीने की छुट्टी।

७—कारखानों में पढ़ने की उमर के लड़कों की नौकरी पर और स्त्रियों और बच्चों के जमीन के नीचे की खानों में काम करने पर रोकें।

१—जमींदारी और तालुकेदारी प्रदेशों में जमींदारी प्रथा का उठा देना।

२—सम्मिलित खेती का प्रोत्साहन।

३—कृषकों के ऋणों तथा बकाया लगान का बोझ हलका करना।

४—जिन कृषकों के पास ऐसी ज़मीनें हैं, जिनसे काफ़ी आय नहीं हो सकती, उनके लगान की माफ़ी ।

५—लगान और मालगुज़ारी में काफ़ी कमी तथा गैरक़ानूनी माँगों और बेगार के लिये दण्ड ।

६—लगान या क़र्ज़ की अदायगी में जो डिग्री हो, उसमें किसानों की गृहस्थी और खेती की आवश्यक सामग्री तथा उतनी ज़मीन जो उसके कुटुम्ब के भरणपोषण के लिये आवश्यक हो, कुर्क न की जाय ।

